# भाष्यसारजैनसिद्धान्तरत्नम् ।

द्वादशाङ्गरीयपरमागमसारवीतरागस्तुतितत्त्वविवेककल्पसूत्र
स्वरूपसम्बोधनप्रमेयकमलमार्त्तण्डश्रुतिस्मृतिभाष्य
वेदान्तादिनानाग्रन्थसंवलितम् ।

कुरुध्वं मम वाक्यानि यदि मुक्तिमभीप्सथ ।
अद्यैव सर्वमेतच्च मुक्तिद्वारमसंवृतम् ॥
धर्मादिमुक्तिरर्थोऽयं न तदस्मात्परो वरः ।
अत्रैवावस्थिता स्वर्गं मुक्तिञ्चापि गमिष्यथ ॥
कस्मिंश्चिन्महापुराणे महापुरुषवाक्यम् ।

गोस्वामि मालिपल्लीनिवासि

## श्रीराधागोविन्दविद्यारत्नगोस्वामि-विरचितम् ।

मुक्तिदावान्धाशो च कुमारिगोपज प्रभुः ।
गौतमाय महासिंह—सिंहराज बाहादुर, ।
राघवचन्द्रयतीन्द्रस्य महाप्रभ सम्बोधक ।
चकार राजकीयाञ्च शुभाकाशर्गन्दस ।
आलिमसिंह दानकता टङ्कानां पुनः पुनः ।
प्रकाशको विशाहा च राधागोविन्दगोस्वामी ॥

---

कलिकाता—राजधान्याम् ।

११९ नं बैठकखाना रोडस्थित व्यायामार्ज यन्त्रे
श्रीयदुनाथ वन्द्योपाध्यायेन मुद्रितम् ।

वीराब्द २४३२ ।

# उत्सर्गपत्रम्।

भारतविद्वत्कुलशेखर, महामहिम राय, श्रीयुक्त मेघराजकोठारि, बाहादुर, महोदय विद्यमानसमरसोरुहसूर्येषु।

हे महात्मन्! आपके पूर्वपुरुष जैनकुलके शिरोमणि थे, और आपभि उसि परम् पवित्र जैनकुलमें जन्म ग्रहणपूर्वक अर्हत भक्तिका पराकाष्ठा प्रदर्शन स्वरूप होकर भारतवर्षीया जैनसमाज का असाधारण उन्नति साधन कर रहे हैं इस् हेतु इह समीचीन् धर्मियोंके आप् एक श्रेष्ठ हे एतत् विषय अत्रालोचना अनावश्यक देख प्राप्तता प्रयुक्त विवेचनाधीन हो कर; हमने इह जैनसिद्धांतरत्न नामक ग्रन्थ आपके हातमे उपहार देते हैं, कारण आपके जयसे पूर्ण प्रभावान् मनुष्य ऐसुमेंमे बहौत् विरल आते हैं कारण अन्यत्र बहोत जगेमें देखनेमे आता है जो गजमुक्ता अमूल्य है, लेकिन वह गजमुक्तामि व्याधपल्लीयोंके निकट् हेय होय जाता है, किन्तु आपके अजमें रत्नग्राहि जो रत्नपरिचायक भिन्न अन्यत्र इह रत्न स्वरूप जैनसिद्धांतरत्नका उपलब्धि होना अयोग्यतासूचक हय इह जानकर हमने आपहिकी करकमलमे इह उपहार देते हैं आपने आद्यांत दृष्टिपूर्वक आदरके सहित ग्रहण करेंगे तो, हमारा श्रम सफल होय अलमतिविस्तरेणेति॥

श्रीराधागोविन्दशर्मा।

# विज्ञापनम् ।

गोस्वामिराधागोविन्द सिद्धान्तानतिदुष्करान ।
कथं कुर्यादिति मया वितर्क माक्रथा बुधा ॥
निर्गुण सगुणोवापि भूर्ख पंडित एव वा ।
जैनशास्त्रविचारेऽस्मिन् क समर्थोऽस्मि भूतले ॥ २ ॥
अकस्मात् निद्रित स्वप्ने कथयामि कथामिमाम् ।
पूर्वपक्षाय सिद्धान्ता तत्रैव विमृश्याम्यहम् ॥ ३ ॥
हृदि प्रसन्नता जाता सुधासिंधुमिवाप्यित ।
समयेस्मिन् ऋषभोदेव प्रादुरासीत् स्मितानन ॥ ४ ॥
श्रीपार्श्वनाथकरालम्बि साधुसाध्वीति सम्मुखे ।
एवमेवं यद्‌ब्रवीषि जाग्रत्वीति ब्रुवन् ययौ ॥ ५ ॥
मत उत्थाय शय्याया ध्यात्वा तच्चरणाम्बुजम् ।
आत्मान दुर्गत मोच्य त्यक्ततच्चरणाम्बुजम ॥ ६ ॥
मेने धन्यामिवात्मान प्रभो सकरुण वच ।
स्मृत्वा च मद्देहस्य न जाने किमभूत्तदा ॥ ७ ॥

तेनैव कारुण्यबलेन चित्ते
बभूव कर्त्तुं रचन सुबद्धि ।
विस्तृथ गद्येन च कोमलेन
सुखेन धन्य सिद्धातामृत ज्ञस ॥ ८ ॥
ये ये माहाता किल हसभूता
जगत् पवित्रीकरणायमागता ॥

ते से तदुच्छिष्टनिषेविनो मे
कर्त्तुं विशुद्ध रचन प्रवोगा ॥ ८ ॥

हे पंडितोगण इह मूर्ख राधागोविन्द इस गूढ़ विषय किस्तरे विचार करेंगे वा कर सकेंगे, इस विषयका सदेह आप लोग मत् करियेगा, कारण जैनशास्त्र विचार विषयमें क्या सगुण क्या निर्गुण क्या पंडित क्या मूर्ख कोयभि समर्थगोम्य नहि हो सके हय। लेकिन् भगवत ऋषभ देवका कृपावलमेई, ईह अतीव गूढ सिद्धांतत्वको व्यक्त करेंगे। लेकिन् जह भगवत देवका कृपा कयसे अनुभव भया सो लिखते है वा कहते हय। हमने सोते हुये, निद्रित अवस्थामें एकारोज स्वप्न देखते भये न जाने किस हेतु अयसा स्वप्न अनुभव भया सो मैंने कुछभि मालुम नहि कर सके, लेकिन जो स्वप्नमे पूर्वपक्ष वो सिद्धांतविचार कर रहे थे, उसि समय अकस्मात् चित्त प्रसन्न हो गया जानो मैंने कोइ सुधारूप अमृत प्राप्त हो रह हे, इतने दिखाई आया यो भगवत पार्श्वनाथ जी महाराजके करावलम्बि भगवत ऋषभदेवजी महाराज मधुरहास्यके सहित हमारे सम्मुखोन प्रादुर्भूत होकर कहने लगे 'हे राधागोविन्द तुमने उत्तम सिद्धांत करते हो, तुमने यो सिद्धांत स्वप्नमें विचार कियो, उसिको जाग्रत हो कर प्रकाश करो" इतना हि कह कर दोनो भगवत देवोने अंतर्धान हो गये। ईतना हिसे हमारा निद्राभंग हो गया हमने भि बिछोनासे उठ कर, जह भगवत दोनोके चरणपर ध्यान लगा कर, अपने हृदयको धन्य कर मानने लगे यो प्रभु भगवत देवोका करुणा यो ऐश्वर्यकु स्मरण कर जो क्या सुखानुभव भया

सो कोइ सुरत प्रकाश नहि कर शक्ते है लेकिन् उन्होंकेइ कृपा बलसे हमारे चित्तमे इस ग्रथका रचना विषय सुबुद्धि हो गया। उनि कृपाबलसे, हमने मूर्ख हो करभि कोमल गद्य भाषामे विचारपूर्वक एइ सिद्धान्तामृत रचना करते भये सुधीलोग हमारे रचनाको दोष नहि ग्रहण कर गुणोको ग्रहण कर स्वमङ्ग पवित्र करे॥

श्रीराधागोविन्दगोस्वामी।

# शुद्धाशुद्धिपत्रम् ।

## प्रथमपादे ।

| | | |
|---|---|---|
| ५ | चत्वद | एव |
| २ | स्वग | स्वर्ग |
| १ | दृष्टविषय | दृष्टविषय |
| , | चाम्यासिले विश्राम | चाम्यासितविश्रामे |
| ४ | चविलुवीरवमम्य | चविलवैरीमवम्य, |

ॐ

द्विपृ ।

| | | |
|---|---|---|
| १२ | गड भ | गडच |
| १२ | कर्मेक चाउतया | कपृक जगत् चाउतया |
| १? | कार्योर कारच | कार्यका कारच |
| २ | शुद्धाशुद्धारम्यवविषयम्य | शुद्धाशुद्धेरम्यवविषयत्व |
| १ | प्रावरचतिरच्चारचेन | प्रावरचतिरस्कारेच |

द्विपृ ।

| | | |
|---|---|---|
| ८ | देवी | देव |
| ७ | इव | चव |
| ७ | ,, | निमित्त यव कारणं उचित् इव |

## द्वितीयपादे ।

| | | |
|---|---|---|
| ५ | स्वप्रयुक्त | स्वाप्रयुक्त |
| ८ | समेत | समेत |
| १० | यतत्तत्त्वरूपे | यतत्तत्त्वरूप |
| २ | भीतिकाकाशपञ्चभी | भीतिकाकाशपञ्चभी |
| ८ | चपमाभिधाय | चपमाख्येयाय |
| १ | निरोत्रेतार्थविभाकाकरोति | निरोधौ तार्थद्विराकरोति |
| १ | यथाकारत्व | यथाकारत्वं |
| ५ | चत्रापत्तम | चत्रीपत्तच |

| पृष्ठा | पं | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|

हिन्दि।

| | | | |
|---|---|---|---|
| ११ | १ | तन्तु | सदृश |
| ४९ | ४ | घटाग्निहोति | ग्रामहेति |
| ५१ | ११ | स्वग्रामभर्षे | स्वग्रापयमूर्ध |

## तृतीय पादे।

हिन्दि।

| | | | |
|---|---|---|---|
| ६ | ८ | परिणति | परिणामवति |
| ६२ | १ | सपादित | सापादित |

## द्वितीयखण्डस्य प्रथमपादे।

| | | | |
|---|---|---|---|
| ७५ | ० | स्मृति | श्रुति |
| ८ | ० | हृदाम्बमन्नव | हृदाम्बवमनव |

हिन्दि।

| | | | |
|---|---|---|---|
| ७८ | ६ | प्रथमन्यथा | प्रथाक यथाय |
| ८४ | ५ | जाता | जाना |
| ८१ | ४ | कतत्वादि | प्रयत्नभीमत्वादि |

## षष्ठ पादे।

संस्कृत।

| | | | |
|---|---|---|---|
| १ १ | २ | पुरुषघातशूना | पुरुषघात्यशूना |
| १ ५ | १ | कार्यश्रूना | कथ्यतशूना |

हिन्दि।

| | | | |
|---|---|---|---|
| ९९ | १ | च म | चल |
| १० | ५ | प्रयुक्त | प्रयुक्त |
| १ ४ | २ | परमाथ | परमाथ |
| | ७ | परमाथ | परमायु |

| पं | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|

## सप्तमपादे ।

संस्कृत ।

| | | |
|---|---|---|
| ८ | विदधाति | विदधति |

## अष्टमपादे ।

| | | |
|---|---|---|
| १ | निरटपिह | निरटहि |
| १ | धिद्भ्या | धिग्भ्या |
| ७ | सु सवन | सन् सवम |
| ४ | परमाणर्गतस्यांस्य | परमाणोर्गतस्यायस्य |
| १० | सम्यग्दर्शितज्ञाति | सम्यग्दर्शनज्ञाति |
| ५ | जयसा भजा ना मधिपि सगे हैं कि द्रव्यसमूहकि इयकाल तर्का म॰रसभावसे अपगुति और स्थिति कहा जाते हैं यथार ज्ञानावरणादि मूल प्रकृति अन्तराय इयसद सभाव सिद कभिनि प्रच्युत होता नहीं हैं इसमाधिक प्रच्युत नहीं होन का नाम स्थिति है । | |
| १२ | कर्मभावपरिणतपुद्गलस्कन्धानामात्मनानन्तप्रदेशाना | आत्मप्रदेशानुप्रवेश प्रदेशबन्ध |
| १ | रतिकार | रति रतिकार |

हिन्दि ।

| | | |
|---|---|---|
| ७ | एकाशकाल | एकानमान |

## नवम पादे ।

संस्कृत ।

| | | |
|---|---|---|
| ८ | समूलकायकर्तिता | समूलकार्य कविता |
| १० | तस्मिन् पदापदपदा | तस्मिन् पदपदपद |
| २ | निश्चलतौद्यर्ध | निश्चलतौथ्य |
| ५ | शक्तिराद्येषु | शक्तिदयेषु |

| पृष्ठा | पं | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| १६७ | ३ | स च | सत्व |
| ११८ | ६ | परमार्थवाच्य | मिथ्यापरमार्थवाच्य |
| ११८ | ९ | सङ्गत सत्व | सांवृत सत्य |
| " | ८ | मदभि | मदभि |
| १७ | ३ | ब्रह्ममद | ब्रह्माभिद |
| | ६ | ज्ञानबोधस | ज्ञानबोधस्य |
| १७२ | २ | बाध्यसत्तयोगात् | बाध्यसत्तायोगात् |
| | ३ | सद्रूपत्वात् | सद्रूपत्वात् |
| " | ७ | सद्कार्यस्वभाव | सर्वेकार्यस्वभाव |
| १७३ | २ | न चाच चविके | न चाभावचिर्क |
| | ४ | शून्यज्ञानमिति | शून्य ज्ञानमिति |
| १७५ | " | सत्त | सत्य |
| १७६ | | परीचवदाभावात् | परीक्षावदाभावात |

सिद्धिः ।

| पृष्ठा | पं | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| ११८ | १ | सांवृत | सांवृत |
| १७४ | ८ | चिद्घन | चिद्घन |
| १७५ | २ | पराजितादि | पराजातिकी |
| १७५ | ३ | प्रमाणवाचरत्व | प्रमाणाभीचरत्व |
| १७६ | ८ | चिदिमयपरीक्षम | चिदिमयस्य परीक्षणं |

संग्रह ।

| पृष्ठा | पं | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| १७७ | २ | सत्यज्ञानमनन्त | सत्यं ज्ञानमनन्तं |
| १७९ | ६ | सर्वेच्छोपकार सुधीन पुरुषे निपुणलोकेन आगादिधर्मेण बोधयति मायया। ब्रह्माज्ञानत्यादि | |
| १७९ | " | इत्येतद्विधिपरमैदान्तिकवाक्यतया चरति प्रपञ्चहिरव पुरुषो ब्रह्मावगाधन इति समानत्वादि | |
| १८ | ११ | जीवाजीवाश्रवसम्बरनिर्जरबन्धमोक्षा नाम। तत्र संवरपदार्थादि | |
| १८ | १४ | जीव | जीवा |
| १८५ | ७ | कर्मकृत् | कर्मकर्ती |

| पृष्ठ | पं | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| १८१ | ० | मृत्युध्यान | मोक्षध्यान |
| १८१ | २ | चोदव | चोदव |
| १८२ | १० | पुण्यापुण्य | पुण्यापुण्य |
| १८३ | ८ | मीन्दरै | मोयवारै |
| १८४ | १ | अथातिकन्ता | अथातीनि कम्पानि |
| „ | २ | तदभ्यीऽपि नि नैव | यदि अभ्यीऽपि न निर्णय |
| „ | ३ | परमाणुगुण | कर्मांशुगुण |
| „ | ८ | सम्पादनशरीय | सम्पादनशरै |

हिन्दि।

१०० ११

यद्दीप इस ब्रह्मज्ञानही पुरुषार्थ नहीं। पुरुषके व्यापार करके व्याप्य सोही पुरुषार्थ है इस ब्रह्मसमानभूतकी उत्पत्ति विकार संस्कार नहीं सम्भवे है तैसे कोनभी अनित्य अर्थ करके तिस स्वभावकी अनुत्पत्तिपणास नहीं अनुपतित अभावमें व्यापारकी व्याप्तता रहता है। तिस सेती ब्रह्मका अवगति पुरुषार्थ नहीं है। इति। यद्दीय दोष है ऐसा कहे हैं। फल तर जिज्ञास्यके भेद सेती। फलभेदको विभाग करके दिखाते है। अभ्युदय फल है धर्मज्ञानका सेती जिज्ञासाकरके अनुष्ठानसेती ज्ञानके अधीन अपेसे ज्ञानका फल तर जिज्ञासाका फल। ऐसे फल भेद है। नहीं केवल स्वरूप फलभेद है तिसके उत्पादनके प्रकारभेदसे भी उसका भेद है ऐसा कहे है। सो अनु अनुष्ठानापेक्ष है ब्रह्मज्ञान फेर अनुष्ठानान्तरकी अपेक्षा नहीं रखता है आत्मज्ञानसेती अन्य अनुष्ठानान्तरकी अपेक्षा नहीं करे है। नित्यनैमित्तिककर्मानुष्ठान मल भावको दूर किया इस हेतु सेती। पुरुष व्यापार करके व्याप्य जोइ सोही पुरुषार्थ है जिज्ञास्यका भेद आत्यन्तिक है सो कहे है। भव्यश्च धर्म इति इस सूत्र में जो भविता है सो भव्यहै अर्थ अर्थ में कृत्यप्रत्यय है। भविता है सो भावकके व्यापार करके होने योग्य है इस वास्ते व्यापारके अधीन है। तिससेती पूर्व ज्ञान कालमें नहीं है। भूत है सो भव्य है सत् है पश्चात से नहीं कदाचित् अनेकान्त है। नहीं केवल स्वरूपसे जिज्ञास्यका भेद है ज्ञापक प्रमाणप्रवृत्तिके भेदसे भी भेद होता है। ऐसा कहेहै। चोदनालक्षण प्रेरणा तिसकी प्रवृत्तिके भेदसे भी भेद है। चोदना ऐसा वेदिकशब्द है विशेष करके सामान्यके लक्षण सेती प्रवृत्ति भेदका विभाग करते है जोहि प्रेरणाधर्मकोइ इति। आशादी पुरुषाभिप्राय भेदोक

धर्मभव पर्वेमे धर्मोत्पत्त वेदके लिये चोदनाका उपन्यास है। इसी वास्ते जैमिनीने कहा लिखा यान स्पदेश ह। जो चोदना साध्यम फेर पुरुषव्यापारमें भावनामें तिसके विषयम फेर योगादिकमें जोही भावनाका विषय है तिस्के अधीन निरूपण पर्णे से प्रथम की भावनाका विश धातु संबंध पद में है इस व्युत्पत्तिमे भावनाका तिस्के वाचा याता दिखी को उपेक्षिता पासताकी अवगमकताही है तहां क्योपदारमूलकार्डे पुरुषको नियोग करतो ही कहे। अन्यथा नही। प्रकाका चोदना तो पुरुषका अवबोध करती ही है केवल नही प्रवृत्ति कराती ह अवबोध कहांम करती है प्रतिलेखित अवबाध को चोदनालक्षणपणे मेंही। नतु प्रकारा। आत्मा ज्ञातव्य ए मूलविधिपर वैभाल है अवके एतदात्मता करके अवबोधन प्रवृत्ति करने भन पुरुष प्रकाका अवबोध करता है। मुमानपना धना चोदना करन प्रमाचोदनाका ह। उसमेंती कह ह। नही पुरुष अवबोधमें नियुक्त होताहै। इस एतात्पन्न है। नही प्रमाणाधानुसारम पुरुषको नियोजन करना तिस्को प्रमाणभाव करके निरूपणसे। अवाप्यपणेसे। नही उपासना में तिसा भी न्यायपक्षमें वेदमानका अन्वयव्यतिरेक चलित पणे करके प्राप्त ज्ञानसे अभिधेय ह। प्राप्तबोधन भी नही तिस्का भी अधीतस्य की पुरुष जाना ह मन्याद मुमको प्राप्ताल अन्यथ होता ह यहांतो स्थात कहे है। यथा इन्द्रियादके लिये। न्यायनिकाल योजना करत है तिस्को पर उसभी आत्मज्ञानविधिपर वर्णनके लिये आत्मतत्वका विनियम नही होता है प्रत्यक्ष नही होता है नही तदात्मतत्वपर है किन्तु तिसके ज्ञान विधि पर है तिसके अवरोध वैही अर्थके पद है। नही वेदको बोध्यतिरूपणसे अपरिमितपणसे अस्यपरसे भी बोधतत्वका विनिदय ह। मुमारोपणाभी उससे उत्पत्ति होता। तिससेतो वेदविधिपर वर्णन नहीं है एसिद्ध भया। फेर न्यायदम ग्रन्थ है ए जैमिनी को इस ह अनुभव क्रियाद्यपा इस प्राप्य चिन्मयज्ञानरूप। इति मनु कहा जैसा करता है वाणी। अस्य अनुष्ठानत्र वाक्यतो। अभिमतधर्मको सिद्धि है अस्य जग कहते हो। नहा। अमको क्या अर्थ है क्या प्रमाण है। तब उत्तर, सुणो इस्का उत्तर सावधान पणसे। पूर्वमीमांसा में जैमिनी मुनिने। जो मीमांसा शास्त्रमणयो। फेर स्याद्वादभी प्रसमसे आया सो धर्म। इसरे स्याद्वादमत का सर्वज्ञ प्रचार ह।

शुभं भवतुतराम्।

---

॥ नमोऽर्हते ॥

भाष्यसार-

# जैनसिद्धान्तरत्नम् ।

---

अथ भाष्यसारजैनसिद्धान्तरत्ने बौद्धनिरासोनाम
प्रथम खण्डोलिख्यते ॥

---

पूर्णानन्दमनिन्द्यमन्तरहित वस्तु पर शाश्वतम्
स्वर्ग स्थान-वसानकारणपर नत्वा किमप्यद्भुतम् ।
ज्ञानाधानगुरू प्रणम्य च यथाज्ञान निदानञ्च मे
कुर्वे बौद्धनिराममत्रतरति" सिद्धान्तरत्ने मुदा ॥

तस्यास्य सौगतमतेन असंवन्धोऽभिधीयते । सर्वोऽप्यय सिद्धान्तरत्न प्रत्यक्षानुमानाभ्या अनवगतेष्टानिष्टप्राप्तिपरिहारोपायप्रकाशनपर सर्वपुरुषाणा निसर्गत

---

बौद्ध मत के सहित इस जैन मतका उपेक्षारूप सम्बन्ध कहना होता है। जिस उपायसे कि अभिलषित फलकी प्राप्तियो अनिष्टक्रियाका त्याग प्रत्यक्षवा अनुमानसे कि मालुम

एव तत्प्राप्तिपरिहारयोरिष्टत्वात्। दृष्टविषये चेष्टानिष्टप्राप्तिपरिहारोपायज्ञानस्य प्रत्यक्षानुमानाभ्यामेव सिद्धत्वान्नागमान्वेषणा। न चासति जन्मान्तरसम्बन्ध्यात्मास्तित्वे विज्ञाते जन्मान्तरेष्टानिष्टप्राप्तिपरिहारेच्छा स्यात्। स्वभाववादिदर्शनात् तस्मात् जन्मान्तरसम्बन्ध्यात्मास्तित्वे जन्मान्तरेष्टानिष्टप्राप्तिपरिहारोपायविशेषे च जैनसिद्धान्तरत्न अथवा जैनशास्त्र प्रवर्त्तते॥ १ ॥

---

नहि होसक्ता लेकिन इह सम्पूर्ण मीमांसका मालुम होनाहि इह जैन सिद्धान्तरत्नका गुरुतर उद्देश्य हय॥ जिस हेतु मनुष्यमात्रहि स्वभावसिद्ध इष्टलाभको अनिष्टको दूर करणेमे व्यग्र होते है या रहते है। लौकिक इष्टलाभको अनिष्ट निवृत्तिका उपाय प्रत्यक्ष वा अनुमानसे ति मालुम करते है इस सम्बन्धमे शास्त्रप्रमाणका अपेक्षा नहि है। कारण शरीरातिरिक्त अर्थात् इह देहसेति अपर देहका सम्बन्धयुक्तता आत्माका अस्तित्व स्वीकार नहि करणेसे जन्मान्तरीय इष्टलाभ वा अनिष्टका निवृत्ति निमित्त इच्छा नहि होय सक्ता है। जैसे वा जिस हेतु अस्तित्व स्वीकारके पराङ्मुख चार्वाकगणोके तादृश इच्छा देखनेमे नहि आता है। इसिवास्ते जन्मान्तरीय सम्बन्ध आत्माका अस्तित्वको इष्टलाभादिको अनिष्टनिवृत्तिका उपाय विशेष जाननेवास्ते इह जैनसिद्धान्तरत्नका स्थिति वा स्थापन होता है॥ १॥

श्रुतेश्च ॥ येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके इत्युपक्रम्यास्तीत्युवोपलब्धव्य इत्येवमादिनिर्णयदर्शनात् । यथा च मरणे प्राप्येतुरुपक्रम्य योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिन । स्थाणुमन्येऽनुसयान्ति यथाकर्म्म तथा श्रुतमुद्गीति च । स्वय ज्योतिरित्युपक्रम्य त विद्याकर्मणी समन्वारभेते पुण्यो

कोई कहते हैं मनुष्यादिका मृत्यु होनेसे लोकान्तर हय, कोइ कहते हय लोकान्तर नहि हय, इसप्रकारके वालोंमे हमारे चित्तमे लोकान्तरके अस्तित्व विषयमें सन्देह होता हय। लेकिन वेदसे कहते हय—योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिन इत्यादि ॥ इह वचनका मतलब इह हय देही देहत्यागपरभि अपाना कर्म्मानुयायी देहि मनुष्यादि वा वृक्षादिरूप देहिपरिग्रह करते हय, तथापि तहा परभिधर्म्माऽधर्म्म भी पुनर याय जह प्राप्त देहिको आश्रय करता हय जिनका जयसा कर्म्म उसको ओषधादि शास्त्रानुमोदित अन्नादिक् होता है अयसा कृतनिश्चय हय, अवरभि वेदसे कहते हय मृतुको प्राप्त होकर ईभि उपक्रमकर उपसहारसे शरीर लाभके निमित्तसे वौहि आत्मा मनुष्यादियोनि प्राप्त होनेसे ओषधादि इत्यादि शरीर ग्रहन करते है। अथवा जिनका जयसा कर्म्म ओषधादि अन्नादि लाभ होता है अपर वेदान्तसे स्वय ज्योतिरिति बचनकु उपक्रम करके उपसहारसे गृहीत होता है, ज्ञान वाबोधर्म्माऽधर्म्मरूप कर्म्म उसि मरणजनित व्यक्ति कु अनुगमन करता है। पुणरकर्मसे

वे पुण्येण कर्मणा भवति । ज्ञापयिष्यामीतुपक्रम्य विज्ञानमय इति च व्यतिरिक्तात्मास्तित्वम् । तत्प्रत्यक्ष विषयमेवेति चेन्न वादिविप्रतिपत्तिदर्शनात् । न हि देहान्तरसम्बन्धिन आत्मन प्रत्यक्षेणास्तित्वविज्ञाने लोकायतिका बौद्धाश्च न प्रतिकूला स्युर्नास्त्यात्मेति यद्वत्त ॥ २ ॥

नहि घटादौ प्रत्यक्षविषये कश्चिद् विप्रतिपद्यते नास्ति घट इति । स्थाणवादौ पुरुषादिदर्शनान्नेति

---

स्वर्गादिरूप पुण्यलोक मिलता है । अवर इसि प्रश्नोत्तर विषयमें निधारित पुरुष क श्रुतिमे कहते है यो तुमको मालुम करते इस इह उपक्रम करके आत्मा विज्ञानस्वरूप इसि रूपमे आत्मा शरीरा तिरिक्त रूपमे प्रतिपादित होता है इसिवास्ते देहातिरिक्त आत्माका अस्तित्व विषयमे शास्त्रहि प्रमाण है । क्योंहि आत्मा प्रत्यक्ष प्रमाणका गोचर करके स्वीकारकिया नहि जाता है, जिस हेतु आत्मविषयमेवादिगणोंके नानाप्रकार परस्पर विरोधमे नाना प्रकारका मतामत मालुम होता है । एक देहमे अन्य देहका सम्बन्ध करे अयसा प्रकार, यो आत्माका प्रत्यक्ष प्रमाण होतातो बौद्धलोकचार्वाक कभिभि देहातिरिक्त आत्मा नहि कहके हमलोग के विरोधवादि ॥ २ ॥

 विप्रतिपत्ति

चेत्, न निरूपितेरभावात् । नहि प्रत्यक्षेण निरूपिते स्थाण्वादौ विप्रतिपत्तिर्भवति। वैनाशिका-स्त्वहमिति प्रत्यये जायमानेऽपि देहान्तरव्यतिरिक्तस्य नास्तित्वमेव प्रतिजानते। तस्मात् प्रत्यक्षविषयवैल-क्षण्यात् प्रत्यक्षान्नात्मास्तित्वसिद्धिस्तथानुमानादपि । श्रुत्यात्मास्तित्वे लिङ्गस्य दर्शितत्वात् लिङ्गस्य प्रत्यक्ष-विषयत्वान्नेति चेत् न जन्मान्तरसम्बन्धस्याग्रहणात्

---

वा घट नहि हय, अथवा विरुद्ध मत नहि हय। यो कहोतो प्रत्यक्षसिद्ध हुनसेभि, मनुष्योंका पुरुषरूपमें ज्ञान होते देखा जाता हय। (प्रत्यक्षसिद्ध आत्मामें विरुद्धमति वा बुद्धि क्यों नहि हो सकेगा) इसप्रकारके आपत्ति वा उजर करना न्यायसङ्गत नहि हो सक्ता हय जिस हेतु जिस मनुष्योंको स्थाणुरूपका निश्चय ज्ञान नहि है, तिनि कुहुक्षमें पुरुषरूपका भ्रम हो सक्ता है अथवा होता है जिस कुहुकरूपका निश्चय है उस क्षुपुरुषयोधकरूप भ्रम नहि होता है किन्तु आत्माका अहं अथवा निश्चय ज्ञान रहतेभि बौद्ध वा लोकायतिक वा चार्वाकगणोंने आत्मा देहातिरिक्त नहि हय कहके स्वीकार करते हैं प्रत्यक्षके विषय घटादिके सहित इस आत्माका वैलक्षण्य रहनेसे प्रत्यक्षप्रमाणसे ति देह भिन्न आत्माप्रमाणित नहि होय सक्ता है। वो यसि प्रकारके अनुमानसेभि जड़ आत्मा प्रमाणित नहि होते हय। यो कहो यें दर्श प्रमाणसे ति आत्माका परिचायक धर्म सुखदुःखादि अभि

आगमेन स्वात्मास्तित्वेऽवगते सिद्धान्तरत्नप्रदर्शित-लौकिकलिङ्गविशेषैश्च तदनुसारिणो मीमांसकास्तार्किकाश्चाह प्रत्ययलिङ्गानि च सिद्धान्तान्येव स्वमतिप्रभवाणीति कल्पयन्तो वदन्ति प्रत्यक्षश्चानुमेयश्चात्मेति। सर्व्वथाप्यस्त्यात्मा देहान्तरसम्बन्धीत्येवप्रतिपत्तेर्देहान्तर-गतेष्टानिष्ट-प्राप्तिपरिहारोपाय-विशेषार्थिनस्तद्विशेषज्ञापनाय बौद्धनिरासकाण्ड समारब्धम् ॥ २ ॥

---

हित भया हय, जह प्रत्यक्षका विषय है अथवा अनुमित होयगा वा होते है तथापि आत्माका जन्मान्तरसम्बन्ध अनुमित नहि हो सक्ते हय, वह केवल आगम प्रमाणसे ही मालुम करने होगा। शास्त्रप्रमाणको सिद्धान्तरत्नप्रदर्शित लौकिक लिङ्गविशेषमें श्वासप्रश्वासादि प्रभृतिसे ही तादृश आत्माका विद्यमानता मालुम करनेसे ई सिद्धान्तरत्नानुसारि मीमांसक वो तार्किकगण सिद्धान्त रत्नोक्त ईह ज्ञानको जैनसिद्धान्त लिङ्गसमूह वह लोगका निज बुद्धि उद्भासित इसि प्रकारसे कल्पनाकर आत्मा प्रत्यक्ष अनुमेय कहते रहते हय। शास्त्र वा अनुमानादिसे जिसि प्रकारकेइ होयन क्यों जिन कुदेहान्तर स व धीय आत्माका अस्तित्व मालुम कर सके है वा मालुम किये है, तब्हि कोई अन्य देहमे स भाव्यमान इष्ट फल लाभको अनिष्टनिवृत्तिनिमित्त उस्को उपाय विशेषमें लाभका इच्छा होय वा होय सक्ता है ओहि उपाय विशेषरूप ज्ञापन जन्य बौद्धनिरासकाण्डस्वरूप सिद्धान्तरत्नका प्रथमभाग प्रारम्भ हुआ है ॥ २ ॥

नत्वात्मन इष्टानिष्टप्राप्तिपरिहारेच्छाकारणमात्म-
विषयमज्ञानं कर्तृत्वभोक्तृत्वरूपाभिमानलक्षणं त
द्विपरीत स्वशास्त्रोक्तसाधनैरष्टकादिमुक्तसाभिर्भूत-
स्वाभाविकात्मरूपमा जीवस्य सदोर्द्ध्वगतिरालोकाकाश-
स्थितिर्वामुक्ति । सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्राख्यं रत्नत्रय
तत् साधन । सम्यगित्यस्यार्थ —आत्मानात्मविवेकेन
पदार्थानामवगमः सम्यग्ज्ञानम्, रागद्वेषशून्यतया
पदार्थानामवलोकन सम्यग् दर्शनम्, फलनैरपेक्षेण
कर्मणामघातिनामनुष्ठान सम्यग् चारित्रमिति रत्न-
त्रयं मुक्तिसाधनञ्चेति रत्नवदुपादेयमित्यर्थ ॥ ४ ॥

---

हम कर्त्ता हम भोक्ता ऐसा अभिमानमें आत्मविषयक अज्ञान जो है सो आत्मका स्वरूपको आवरण करता है। सोई अज्ञानसे इष्टलाभ ओ अनिष्टनिष्टत्तिका इच्छाको पैदा करता है, ओसी अज्ञानको उलटा विपरीत, जैनशास्त्रोक्त साधनमें कहा भया आठ कर्ममें मुक्तिलाभ होनेसे स्वाभाविक आत्मस्वरुपका आविर्भाव होता है। तब जीव ऊर्द्ध गतिप्राप्ति होकर आलोकमय आकाश में स्थिति करे उसिका नाम मुक्ति है। ज्ञान दर्शन चारित्र यह तिनहि मुक्तिका कारण है ॥ ४ ॥

अथ ग्रन्थारम्भ ।

बौद्ध श्रुतिं प्रमाणयन्ति यथा ॥ "नैवेह किञ्चनाग्र आसीत् ।" अस्यार्थ —इह संसारमण्डले किञ्चन किञ्चिदपि नामरूपप्रविभक्तविशेष. नैवासीत् न बभूव प्रागुत्पत्तेर्मनआदे । किशुन्यमेव बभूव शून्यमेव स्यात् ? "नैवेह किञ्चनेति" श्रुते । न कार्य्यं कारणं वासीत् उत्पत्ते श्च । उत्पद्यते हि घट । अत प्रागुत्पत्ते र्घटस्य नास्तित्वम् । ननु कारणस्य न नास्तित्व मृत्

---

बौद्ध मे वेदवाक्यसेति इस प्रकारसे मत प्रकाश करते है। मन प्रभृतिका सृष्टि पूर्वमे इह संसारमण्डलमे नाम रूपादि हेतुमे ति विशेषरूपसे कुछ भि दिखाइ नहि आताथा वा नहि था । तब क्या सम्पूर्ण शून्यहि था क्यो "कुछभि नहि था" इसि वेदवाक्यसे प्रमाणतासधक सम्पूर्ण जगत् शून्यमयत्वह सम्भव होता हय योहेतु कार्य्य वा कारण कुछभि नहि था । जिस हेतु घटादि कार्य्य उत्पन्न होता हय इसि निमित्त उत्पत्तिका पूवमे उसिका अस्तित्व नहि था कहना चाहिये। यो दृष्ट नहि होता है उसिका अभाव मानना चाहिये। सो होनेसे उत्पत्तिका पूर्वमे कार्य्यका दृष्टि नहि होता हय, इस निमित्त कार्य्यका अस्तित्वाभाव स्वीकार कीया जाय शक्ता हय। घटादि कार्य्यका उत्पत्तिके पूवमे मृत्पिण्डादिरूप कारण प्रत्यक्ष होता हय, इसिवास्ते

पिण्डादिदर्शनात्। दन्नोपलभ्यते तस्यैव नास्तिता अस्तु कार्य्यस्य न तु कारणस्योपलभ्यमानत्वात्। न। प्रागुत्पत्तेः सर्वानुपलम्भात्। अनुपलब्धिश्चेदभावे हेतुः सर्व्वस्य जगतः प्रागुत्पत्तेर्न कारणं कार्य्यञ्चोपलभ्यते। तस्मात् सर्व्वस्यैवाभावोऽस्तु। न। मृत्युनैवेदमावृतमासीदिति श्रुतेः। यदि हि किञ्चिदपि नासीत्। येनाव्रियते यच्चाव्रियते तदा नावक्ष्यत् मृत्युनैवेदमावृतमिति। नहि भवति गगनकुसुमाच्छन्नो वन्ध्यापुत्र इति॥ १॥

---

उसका अस्तित्व स्वीकार करना होयगा, इसितरहसे मीमांसाभि समीचिन वा प्रशंसनीय नहि होय सक्ता हय, जिस हेतु सम्पूर्ण पदार्थइका उत्पत्तिका पूर्व्वमे उपलब्धि नहि होता हय। यो उपलब्धि नहि हो माई वस्तुका अभाव ज्ञापक होय, तब सृष्टिका पूर्व्वमे कार्य्यओ कारणस्वरूप सम्पूर्ण जगतकाभि उपलब्धिता नहि था, उसि हेतु सम्पूर्ण जगत्का अभावसिद्ध होता होय, इसिवास्ते शून्यवादइ सत्य होता है या पर्य्यवसित होता है। बौद्धोका इह मतखण्डन निमित्तक सिद्धान्तवादि जैन कहते हय, तुमारा इह सिद्धान्त युक्ति वा प्रमाण विरुद्ध कहके अग्राह्य होता हय, जिस हेतु इह श्रुतिमे कथित हुवा है इह सम्पूर्ण जगत् मृत्यु कर्त्तृक आवृतथा, जिस हेतु सृष्टिका पूर्व्वमे कुछ भि नहि रहता, तब मृत्यु कर्त्तृक आवृत था उसका वचन वेदमे कथित

ब्रवीति च मृत्युनैवेदमावृतमासीदिति। तस्मात् येनावृत कारणेन यच्चावृत कार्य्यं प्रागुत्पत्तेस्तदुभय मासीत् च श्रुते प्रमाणात्। अनुमेयत्वाच्च। अनु मीयते च प्रागुत्पत्ते कार्य्यकारणयोरस्तित्वं। कार्य्यस्य हि सतोजायमानस्य कारणे सत्युत्पत्ति- दर्शनात्। असति चादर्शनात्। जगतोऽपि प्रागुत्- पत्ते कारणास्तित्वमनुमीयते घटादिकारणास्तित्व-

---

नहि होता। वन्ध्याका पुत्र आकाशपुष्प येति शोभित हुया है अथवा याक्य कोई नहि कहता या कहता नहि हय ॥ १ ॥

यो मृत्तिका पूर्वमे कोइ पदार्थइ नहि रहता, तब सतुत्र कारण, क जगत् आवृत रहना अथवा कहना वेदका सर्व्वतोभाव येति असङ्गत होता। जिस हेतु श्रुतिमे इस प्रकार कहती है। उसमे सत्तायमे अथवा हि आना चाहिये, यो कारणयेति यो कार्य्य आवृत था, मृत्तिका पूर्वमे वह दोनोंई सूक्ष्मरूपमे विद्यमान था। मृत्तिका पूर्व्वमे कार्य्य वा कारणक अस्तित्व अनुमानयेति भि प्रमाणित होता है। कारणका सत्तामेइ कार्य्यका उत्पत्ति दिखाइ आता है। कारण नहि रहनेसे, कार्य्यका उत्पत्ति दिखाई नहि आता है। जयसा घटकार्य्येर कारण मृत्पिण्ड, चक्र चोकुलाल प्रभृतिका सद्भावद घटका उत्पत्ति देखा जाता हय, वो नहि रहनेसे उत्पत्ति दिखाई नहि आता है। उसि प्रकार जगत कार्य्यकाभि उत्पत्तिका पूर्व्व मे कारणका अस्तित्व अनुमान करने होयगा, नहि रहनेसे जगत् कार्य्य उत्पन्न नहि होता।

वत् । घटादिकारणस्याप्यसत्वमेवानुपलब्धा मृत्पिण्डादिकं घटाद्यनुत्पत्तेरितिचेन्न । मृदादेः कारणत्वात् । मृत्सुवर्णादि हि तत्र कारणं घटरुचकादे न पिण्डाद्याकारविशेषः । तदभावे तदभावात् । असत्यपि पिण्डाकारविशेषे मृत्सुवर्णादिकारणद्रव्यमात्रादेव घटरुचकादिकार्य्योत्पत्तिर्दृश्यते । तस्मान्न पिण्डाकारविशेषो घटरुचकादिकारणम् । असति तु मृत्सुवर्णादिद्रव्ये घटरुचकादिर्न जायत इति मृत्सुवर्णादिद्रव्यमेव कारणं न तु पिण्डाकारविशेष. ॥ २ ॥

---

शून्यवादी बौद्ध कहते हय—मृत्पिण्डरूप कारणको विनाश नहि करके घटकार्य्यका उत्पत्ति नहि होता हय, इसिवास्ते मृत्पिण्डका ध्वंसरूप अभावसे ति घटका उत्पत्ति भया हय ऐयसा मानना चाहिये। इह दृष्टान्तसे ति अभावसे ति समुदय जगत् का उत्पत्ति होता हय कहेगे। सृष्टिका पूर्वसे जगत् कारणका अस्तित्वानुमापक कोई प्रमाण नहि हय। जैन कहते हय, ईह बुद्धमत न्यायसङ्गत नहि हो सक्ते हय, जिसहेतु घटकार्य्यका प्रति मृत्तिकाहि कारण होता है, रुचक ( आभरण विशेष ) कार्य्य का प्रति सुवर्ण हि कारण होता है, पिण्डादि आकारस्वरूप विशेष कारण नहि होता हय, जिस हेतु पिण्डादि आकारादिविशेष नहि रहनेसे भि, मृत्तिका वा सुवर्णादि से ति घटरुचकादिका

सर्व्वं हि कारणं कार्य्यमुत्पादयत् पूर्व्वोत्पन्न-स्यात्मकार्य्यस्य तिरोधानं कुर्व्वत् कार्य्यान्तरमुत्-पादयति। एकस्मिन् कार्य्ये युगपदनेककार्य्य-विरोधात्। न च पूर्व्वकार्य्योपमर्द्दे कारणस्य स्वात्मोप-मर्द्दो भवति। तस्मात् पिण्डाद्युपमर्द्दे कार्य्योत्पत्ति-दर्शनमहेतु प्रागुत्पत्ते कारणासत्त्वे। पिण्डादि

उत्पत्ति देखनेमे आता हय। मृत्तिका सुवर्णादि नहि रहनेसे घटवो आभरणादि कार्य्य उत्पन्न नहि होता हय ॥ २ ॥

सम्पूर्ण कारणही कार्य्य उपादन करनेके वखत पूर्वोत्पन्न कार्य्यको तिरोहित वा दूर करके, अन्य कार्य्यको उत्पादन करता है। जिस हेतु विरोधताके वशीभूत एक कालमे एक उपादान कारणमे अनेक कार्य्य रहने नहि सक्ते हय। यथा—मृत्पिण्डरूप कार्य्यका विनाश होनेसे, मृत्तिकारूप कारणभि निजमे विनष्ट होती है, इमि प्रकारसे आपसेभि होय नहि सक्ते हय, जिस हेतु मृत्पिण्ड नष्ट होनेमे भि मृत्तिका कार्य्यान्तररूप सत्ता रहता हय, इसि वास्ते घटका मृत्पिण्डह कारण हय मृत्पिण्डका विनाश कारण नहि हय। सिद्धान्तरत्नमे इस सिद्धान्तह स्थिरीकृत भया। मृत्पिण्डका विनाससेति घटका उत्पत्ति होना दृष्टान्त दिखाकर सम्पूर्ण कार्य्यका उत्पत्तिके पूर्वमे कारणका अस्तित्व-भाव अनुमान करना बौद्धगणोका सम्पूर्ण रूपसे अयुक्त है। यदि कहते हय, मृत्पिण्डविनाश होनेसेभि मृत्तिकारूप कारण नष्ट नहि हो गया है, जिस हेतु घटादिका कार्य्यरूपसे मृत्तिकाका

व्यतिरेकेण मृदादेरसत्त्वादयुक्तमिति चेत्। पिण्डादि पूर्व्वकार्य्योपमर्दे मृदादिकारणं नोपमृद्यते घटादि कार्य्यान्तरेऽप्यनुवर्त्ततइत्येतदयुक्तम् पिण्डघटादिव्यतिरेकेण मृदादिकारणस्यानुपलम्भादिति चेन्न। मृदादिकारणाना घटाद्युत्पत्तौ पिण्डादिनिवृत्तावनुवृत्तिदर्शनात्। सादृश्यादन्वयदर्शनं न कारणावृत्तेरिति

---

अनुवर्तन वा विपरीत देखनेमे आता है। इस प्रकारके सिद्धान्त तुमारा अयुक्त होता है। जिस हेतु उसि स्थानमे मृत्पिण्ड वो घटादिका अपेक्षाका अन्य मृत्तिकाका उपलब्धि वा अनुभव नहि होता है, इसिवास्ते मृत्पिण्डका अभाव सेति घटका उत्पत्ति होता है कहना चाहिये। सिद्धान्तवादि जैन शिष्योंने कहते है। बौद्धका इह बात कहनाभि युक्तिविरुद्ध हय, मृत्पिण्डका विनाश होनेसेभि उस्का अवयवमे मृत्तिकात्व रहता है, इसिवास्ते घटका उत्पत्तिकालमे मृत्तिकाका अनुवर्तन सर्व्वदाई रहता है, इसिवास्ते मृत्तिकाहि घटका कारण है। मृत्पिण्डका अभाव कारण नहि हय। क्षणिकवादि बौद्ध इस बातके प्रतिवादमे कहते है, सम्पूर्ण पदार्थई क्षणकालस्थायी मृत्तिका वो क्षणिक, तिस्का अनुसारसे घटका उत्पत्तिकापूर्व्वमे यो मृत्तिका था घटका उत्पत्ति समयमे उस्का सत्ता रहता नहि है। इसिवास्ते उस्का सादृश्यात् दुसरा मृत्तिका घटमे अनुवृत्त वा युक्त होता है, सादृश्य हेतु उह मृत्तिकास्वरूप प्रतीति होता है, यथार्थ एक मृत्तिका

चेन्न । पिण्डादिगतानां मृदाद्यवयवानामेव घटादौ प्रत्यक्षत्वेऽनुमानाभासात् सादृश्यादि कल्पनानुपपत्तेः । न च प्रत्यक्षानुमानयोर्व्विरुद्धाव्यभिचारिता । प्रत्यक्षपूर्व्वकत्वादनुमानस्य सर्व्वत्रैवानाश्वासप्रसङ्गात् ।

---

उह नहि हय । सिद्धान्तवादि जैन मियोंमे कहते हय तुमारा इह अधिकवादभि युक्तियुक्त नहि होता हय । मृत्पिण्डका अवयवस्वरूप मृत्तिकाहि घटमे प्रत्यक्ष प्रतीयमान होता हय । इस प्रकारके स्थानोंमे अनुमानाभास ( सदोष अनुमान ) के मतलबसे उसका अधिकत्व सिद्ध करते पूर्व्व दृष्टवस्तु कालान्तरमे देखनेसे इह वोहि वस्तु इस प्रकारके ज्ञानको प्रत्यभिज्ञानाम स्वरूप कहती है इसि प्रकारके स्थानोंमे सादृश्य प्रयुक्त अभेद बुद्धि होना युक्तिसे ति उपपन्न होता नहि, जिस हेतु अनुमानापेक्षसे ति प्रत्यक्षप्रमाण बलवान होता है । प्रत्यक्ष स्तु मूलकरकेहि अनुमानका प्रवृत्ति होता है । उभि अनुमानसेति प्रत्यक्षसिद्ध पदार्थकाभि अन्यरूप कल्पना होने नहि सक्ता है, उह स्वीकार करणेसे समूह स्थानमेहि अप्रामाण्यका आपत्ति होय सक्ता है । प्रत्यभिज्ञा स्थानमे प्रत्यक्षसे ति वस्तुका अभेदप्रतीति होता है। तुमारा मतमे अनुमानसे ति उस वस्तुका भेद स्वीकार करणेसे प्रत्यक्ष वो अनुमानका परस्पर विरोध होता है , इसिवास्ते प्रत्यक्षसे ति अनुमान बाधित होयगा अथवा अनुमानसे ति प्रत्यक्ष बाधित होयगा इह मतलबका प्रमाण नहि रहनेसे अनुमानहि प्रत्यक्षकु व्याहत करेगा इस प्रकारके आपत्ति सङ्गत होने नहि सक्ता हैं ।

यदि च क्षणिकं सर्व्वं तदेवेदमिति गम्यमानं तद्बुद्धे-रपि अन्यतद्बुद्ध्यपेक्षत्वे तस्या अप्यन्यबुद्ध्यपेक्षत्व-मित्यनवस्थाया तत्सदृशमिदमित्यस्या अपि बुद्धे र्मृषा-त्वात् सर्व्वत्रानाश्वासतैव । तदिदम्बुद्ध्योरपि कर्त्ता-भावे सम्बन्धानुपपत्तिः । सादृश्यात् तत्सम्बन्ध इति चेन्न । तदिदम्बुद्ध्योरितरेतरविषयत्वानुपपत्तेः । असति चेतरेतरविषयत्वे सादृश्यग्रहणानुपपत्तिः ।

जिस हेतु प्रत्यक्षहि अनुमानका मूल हय इसिवास्ते अनुमानापेक्षसे प्रत्यक्ष प्रबल प्रमाण हय किस प्रकारसे अनुमान कर्त्तृक प्रत्यक्ष बाधित होयगा ? अपर तुमारा मतमे सम्पूर्ण पदार्थई क्षणिक, इसिवास्ते ज्ञानका प्रामाण्य निश्चय करनेके लिये अन्य ज्ञानका अपेक्षा करना चाहिये । उसि ज्ञानका प्रामाण्य अवधारण मान्ने कु अपरज्ञान अपेक्षित होयगा । इस मैंभि अनवस्था दोष युक्त होय गया है इसि दोष प्रयुक्त ज्ञानका प्रामाण्य निश्चय होने नहि गया है । इसिवास्ते तिसिका सदृश इह वस्तु इह ज्ञान कु मिथ्या कह गये है, एतसहि सदृश बुद्धिसे सि प्रत्यभिज्ञाका उपपत्ति करना सम्भव नहि हो गया है । क्षणिकवादिका मतै पूर्व्वज्ञान एव परज्ञानका एक स्थायी कर्त्ताका अभावप्रयुक्त प्रत्य-भिज्ञाका सम्भव नहि होता हय । सादृश्य वशमे अभेदबुद्धि होय, इह सिद्धान्तभि युक्तिविरुद्ध, जिस हेतु सादृश्यबुद्धिसेभि एक पदार्थ देखकर अपर पदार्थको तिस्का साम्य ज्ञान अपेक्षा करता है, इसिवास्ते योहि ज्ञानद्वयका एक हि स्थायी विषयक

असत्येव सादृश्ये तद्बुद्धिरितिचेन्न। तदिदम्बुद्धेरपि सादृश्यबुद्धिवदसद्विषयप्रसङ्गात्। असद्विषयत्वमेव सर्व्वबुद्धिमस्त्विति चेन्न। बुद्ध्यबुद्धेरप्यसद्विषयत्वप्रसङ्गात्। तदप्यस्त्विति चेन्न। सर्व्वबुद्धीनां मृषात्वेऽसत्यबुद्ध्यनुपपत्ते। तस्मादसदेतत् सादृश्यात् तद्बुद्धिरित्यत सिद्धं प्राक्कार्य्योत्पत्ते कारणसद्भाव कार्य्यस्य चाभिव्यक्तिलिङ्गत्वात् ॥ ३ ॥

---

कर्त्ता रहना आवश्यक। क्षणिक स्वीकार करनेसे, सादृश्य बुद्धिका सम्भव होता नहि, यो कहो, सादृश्य नहि रहनेसे भि, सादृश्य बुद्धि होता है, सो होनेसे भि सो यहि, इह बुद्धिकाभि असद्विषयता, मतलब विषय नहि रहनेसे भि ज्ञान होता हय, कह सक्ते है। यो इहह इष्टापत्ति करो, तब तुमरा मतमे समस्त ज्ञान हि मिथ्या होय सक्ता है। कारण इह हय यो, ज्ञानका सत्यमिथ्या व्यवहारका मूलविषयका सत्ता असत्ता। ययसा रज्जुमे रज्जुज्ञान सत्य, किन्तु उसमे सर्पज्ञान मिथ्या। जिस हेतु सर्परूप विषय नहि रहना स्थानमे उह ज्ञान हुआ है। इसि प्रकार पूर्व्वदृष्ट वस्तुका अभावमे, जो यहि, एह प्रकारका ज्ञान मिथ्या हि होयगा। इह प्रणालीसे सम्पूर्ण ज्ञान हि मिथ्या होनेसे उस्का सत्यता स्थापनके निमित्त प्रमाणानुसरण करना क्षणिकवादिका वृथा प्रयास होता हय। इसि हेतु इह दूषित क्षणिकवाद सब्ब था कहिये सम्पूर्ण स्थानमे अनादरेय हय, इसिवास्ते कार्य्योत्पत्तिका पूर्व्वमे कारणका अस्तित्व यो

अभिव्यक्तिलिङ्गमस्येत्यभिव्यक्ति साक्षादिज्ञानालम्बनत्वप्राप्तिः । यद्दि लोके प्रावृत तम आदिना घटादि वस्तु तदालोकादिना प्रावरणतिरस्करणेन विज्ञानविषयत्वं प्राप्नवत् प्राक्सद्भावं न व्यभिचरति । तथेदमपि जगत् प्रागुत्पत्तेरित्यवगच्छाम । नहि अविद्यमानो घट उदितेऽप्यादित्य उपलभ्यते । न तेऽविद्यमानत्वाभावादुपलभ्यतेवेति चेत् । न हि तव घटादिकार्य्य कदाचिदप्यविद्यमानमित्यादितेऽप्यादित्य

पूर्व्वमें कहा गया हय, उह निर्विरोधमें प्रमाण हुवा। एहि रीतिसें उत्पत्तिका पूर्व्वमें सूक्ष्मरूपमें कारणमें कार्य्यका विद्यमानता सो सिद्ध होता है ॥ ३ ॥

जिस हेतु कारण व्यापारसें ति कार्य्यका अभिव्यक्ति मात्रहि होता है, असत्का उत्पत्ति नहि होता है, अयमा अन्धकारमें आवृत घटादि पदार्थ प्रदीपादिका प्रभामें अन्धकाररूप आवरण विनाश होनेसें, ज्ञानका विषय होता है, तैसाहि पुर्व्व मेंभि विद्यमान रहता है, उसि प्रकार उत्पत्तिका पूवमें सूक्ष्मरूपमें अव स्थित एहि जगत् कारण व्यापारसें ति आवरणका विनाश होनेसें अभिव्यक्ति या ज्ञान लाभ करता हय, असत् पदार्थकभि अभिव्यक्त नाम प्रकाश होता नहि, अयमा अविद्यमान घट सूर्य्य उदित होनेसें भि उसि स्थानमें अभिव्यक्त वा प्रकाश होता हय नहि। यादि कहते है, तुमरा मतमें कार्य्योत्पत्तिका पूर्व्वमेंभि विद्यमान रहते

उपलभ्येतैव । 'मृत्पिण्डेऽसन्निहिते तम अविद्यावरणे चासति विद्यमानत्वादितिचेत् । न द्विविधत्वादावरणस्य । घटादिकार्य्यस्य द्विविध ह्यावरण मृदादेरभिव्यक्तस्य तम कुड्यादिप्राङ्मृदोऽभिव्यक्ते र्मृदाद्यवयवाना पिण्डादिकार्य्यान्तररूपेण मस्थानम् । तस्मात् प्रागुत्पत्तेर्विद्यमानस्यैव घटादिकार्य्यस्यावृतत्वादनुपलब्धि । नष्टोत्पन्नभावाभावशब्दप्रत्यय

है, सूर्य्य उदित होनेमे विद्यमान घटका अवश्य भावि घटकाभि प्रत्यक्ष होना चाहिये वा होय। सिद्धान्तवादि जैन शिष्योंने कहते है, हमारा मतमे कार्य्यका आवरण दो प्रकार, मृत्पिण्डमेंति अभिव्यक्त घटादि सम्बन्धमे अन्धकार और प्राचीर प्रभृति आवरण अभिव्यक्तिका पूर्व्वावस्थामे घटादि, अर्थात् मृत्पिण्डमे सूक्ष्मरूपमे स्थित घटादिका सम्बन्ध, और काय्यरूपमे मृत्तिकावयवका स्थिति, यथार्थ पूर्व कार्य्यावस्थाहि परकार्य्यका आवरण। उसि हेतु उत्पत्तिका पूर्वमे कार्य्य विद्यमान रहनेसेभि आवृत रहना प्रयुक्त प्रत्यक्ष होता हय नहि। नष्ट, उत्पन्न, वो भाव, वो अभाव शब्दसे तिसे नाश, उत्पत्ति, विद्यमानता वो अविद्यमानता रूपमे यो अर्थप्रतीति वा विश्वास होता हय, उह केवल वस्तुका दोय प्रकार का अभिव्यक्ति वो तिरोभाव कु अवलम्बन करके होता हय, अर्थात् कपालादि खण्डसे ति घटका यो तिरोभाव, उसका नाम नाश पिण्डादि आवरण नहि रहनेसे घटका यो अभिव्यक्ति, उह उत्पत्ति शब्दका अभिधेय वा नामवाचक कहते हय , प्रदीपादिसेति

भेदस्त्वभिव्यक्तितिरोभावयोर्हि विषयत्वाचेप । पिण्ड-कपालादेरावरणवैलक्षण्यादयुक्तमिति चेत् । तम'-कुड्यादिर्हि घटाद्यावरण घटादिभिन्नदेशे दृष्ट न तथा घटादिभिन्नदेशे दृष्टे पिण्डकपाले । तस्मात् पिण्डकपालस्थानयोर्विद्यमानस्यैव घटस्याद्दतत्वा-दनुपलब्धिरित्ययुक्तमावरणधर्म्म वैलक्षण्यादितिचेत् । न । क्षीरोदकादे क्षीरादावरणेनैकदेशत्वदर्शनात् ।

---

अन्धकाररूप आवरण नाश होनेसे घटका जो अभिव्यक्ति, सो भाव शब्दका अर्थ, और मृत्पिण्डादिसे ति तिरोभाव कु अभाव कहते हय । अन्धकार वो प्राचीर प्रभृति घटका आवरण, किन्तु उह घट जो भूमिभागमे रहता है, सो स्थान घटका अधिकरण स्थान घटसे ति आच्छादित रहनेसे अन्धकार घटका उपर वो पार्श्ववर्त्ति भूभागमे रहता हय । इसिवास्ते घट वो अन्धकार एक अधिकरण नहि होता हय, प्राचीरादि वो भिन्न भिन्न भूभाग अधिकरणविशेषरूप अवस्थामेहि लचित होता हय, इसिवास्ते अन्धकार वो प्राचीरादि आवरणके सहित घटका एक अधिकरण का सत्ता नाम स्थायी नहि हय । जो कहो मृत्पिण्ड घटका आवरण होय, सो होनेसे उसकाभि अधिकरण पृथक् होता । किन्तु घट मृत्पिण्डका एक अधिकरणमेहि दृष्ट होता है एहि प्रभेदता हेतु मृत्पिण्ड घटका आवरण नहि हय । इस प्रकारके कुतर्क न्यायानुगत करके स्वीकार कीया नहि याता है ।

उपलभ्येतेव । मृत्पिण्डेऽसन्निकृते तम आविद्यावरणे चासति विद्यमानत्वादितिचेत् । न द्विविधत्वादावरणस्य । घटादिकार्यास्य द्विविधं ह्यावरणं मृदादेरभिव्यक्तस्य तम कुड्यादिप्राङ्मृदोऽभिव्यक्तेर्मृदाद्यवयवानां पिण्डादिकार्यान्तररूपेण संस्थानम् । तस्मात् प्रागुत्पत्तेर्विद्यमानस्यैव घटादिकार्यस्यावृतत्वादनुपलब्धिः । नष्टोत्पन्नभावाभावशब्दप्रत्यय

है, सर्थ्य उदित होनेसे विद्यमान घटका अवश्य भावि ग्रत्यक्ष प्रत्यक्ष होना चाहिये था होय। सिद्धान्तवादि ओर शिष्योंसे कहते हैं, हमारा मतमे कार्य्यका आवरण दो प्रकार, मृत्पिण्डमेंसे अभिव्यक्त घटादि सम्बन्धमे अन्धकार ओर प्राचीर प्रभृति आवरण, अभिव्यक्तिका पूर्वावस्थामे घटादि, अर्थात मृत्पिण्डमे सूक्ष्मरूपमे स्थित घटादिका सम्बन्ध, ओर कार्य्यरूपमे मृत्तिकावयवका स्थिति, यथाय पूर्व कार्य्यावस्थाहि परकार्य्यका आवरण। उसि हेतु उत्पत्तिका पूर्वमे कार्य्य विद्यमान रहनेसेभि आवृत रहना प्रयुक्त प्रत्यक्ष होता हय नहि। नष्ट, उत्पन्न, यो भाव, यो अभाव शब्दमे तिसमें नाश, उत्पत्ति, विद्यमानता वो अविद्यमानता रूपसे यो अयप्रतीति या विश्वास होता हय, उह केवल वस्तुका दोय प्रकारका अभिव्यक्ति यो तिरोभाव कु अवलम्बन करके होता हय, अर्थात् कपालादि खण्डमे ति घटका यो तिरोभाव, उस्का नाम नाश, पिण्डादि आवरण नहि रहनेसे घटका यो अभिव्यक्ति, उह उत्पत्ति शब्दका अभिधेय या नामवाचक कहते हय प्रदीपादिमे ति

भेदस्त्वभिव्यक्तितिरोभावयोर्द्विविधत्वाच्चेप । पिण्ड-कपालादेरावरणवैलक्षण्यादयुक्तमिति चेत् । तम-कुड्यादिर्हि घटाद्यावरणं घटादिभिन्नदेशे दृष्टं न तथा घटादिभिन्नदेशे दृष्टे पिण्डकपाले । तस्मात् पिण्डकपालस्थानयोर्विद्यमानस्यैव घटस्याष्टत्वा-दनुपलब्धिरित्ययुक्तमावरणधर्म्मवैलक्षण्यादितिचेत् । न । क्षीरोदकादे क्षीराद्यावरणैकदेशत्वदर्शनात् ।

---

अन्धकाररूप आवरण नाश होनेमें घटका यो अभिव्यक्ति, सो भाव शब्दका अर्थ, और मृत्पिण्डादिमेंति तिरोभाव सु अभाव कहते हय । अन्धकार वो प्राचीर प्रभृति घटका आवरण, किन्तु उह घट यो भूमिभागमें रहता है, सो स्थान घटका अधिकरण स्थान घटसेंति आच्छादित रहनेसे अन्धकार घटका उपर यो पार्श्ववर्त्ति भूभागमें रहता हय । इसिवास्ते घट वो अन्धकार एक अधिकरण नहि होता हय, प्राचीरादि वो भिन्न भिन्न भूभाग अधिकरणविशेषरूप स्पष्टरूपमेंहि लक्षित होता हय, इसिवास्ते अन्धकार वो प्राचीरादि आवरणके सहित घटका एक अधिकरण का सत्ता नाम स्थायी नहि हय । यो कहो मृत्पिण्ड घटका आवरण होय, सो होनेसे उसकाभि अधिकरण पृथक् होता । किन्तु घट मृत्पिण्डका एक अधिकरणमेंहि दृष्ट होता ह यहि प्रभेदता हेतु मृत्पिण्ड घटका आवरण नहि हय । इस प्रकारके कुतर्क न्यायानुगत करके स्वीकार कीया नहि याता है ।

घटादिकार्य्यां कपालचूर्णाद्यवयवानामन्तर्भावादनावरणत्वमिति चेत् । न । विभक्तानां कार्य्यान्तरत्वादावरणत्वोपपत्तेरावरणाभाव एव यत्न कर्त्तव्य इति चेत् पिण्डकपालावस्थयोर्विद्यमानमेव घटादिकार्य्यमावृतत्वान्नोपलभ्यते इति चेत् । घटादिकार्य्यार्थिना तदावरणविनाश एव यत्न कर्त्तव्यो न घटाद्युत्पत्तौ । न चैतदस्ति तस्मादयुक्तं विद्यमानस्यैवावृतत्वादनुपलब्धिरिति चेत् । न अनियमात् । न हि विनाश-

---

जिस हेतु आहत दो आवरणका भिन्न अधिकरण होयगा, इस विषयका कोइभि प्रमाण नहि हय । पर जलका आवरण दुधमे, इसका व्यभिचारनाहि देखनेमे आता है । एक घटमे जल मयुक्त दुग्ध संकरो देखनेमे आता है, घटादि कार्य्यका अभिव्यक्तिका वक्तमे कपालादिक अवयव घटमे प्रत्यक्ष दिखाइ आता है, उस घटका आवरण, उस आवरण वो आहतका एक समयमे प्रत्यक्ष होना सवयाहि असम्भव हय, इसि प्रकारका आपत्तिभि नहि होय सक्ता ह । जिस हेतु घटसेभि पृथक प्रतीयमान घटका अवयवहि घटका आवरण, घटका सहित मिलितावस्थामे उसका आवरणता नहि हय, इस अभिव्यक्ति घटका अबाधित प्रत्यक्ष निरावरणक कल्पना सिद्ध भया है । वादि कहते ह, यदि उत्पत्तिका पूर्वमेभि घट विद्यमान रहे, केवल मृत्पिण्ड वा कपालादिमेहि आहत रह ॥ परन्तु उसका उपलब्धि होता नहि हय,

मावप्रयत्नादेव घटादाभिव्यक्तिर्नियतात्तम आद्यावृते घटादौ प्रदीपादुत्पत्तौ प्रयत्नदर्शनात् । सोऽपि तमोनाशायेवेति चेत् दीपादुत्पत्तावपि य प्रयत्न सोऽपि तमस्तिरस्करणाय । तस्मिन्नष्टे घटः स्वयमेवोपलभ्यते । न हि घटे किञ्चिदाधीयत इति चेत् । न प्रकाशवतो घटस्योपलभ्यमानत्वात् । यथा प्रकाशविशिष्टो घट उपलभ्यते प्रदीपकरणे । न तथा प्राक् प्रदीपकरणात् । तस्मात् न तमस्तिरस्कारायैव प्रदीपकरणम् । किं तर्हि प्रकाशवत्त्वाय । प्रकाशवत्त्वेनैवोपलभ्यमानत्वात् ॥ ४ ॥

---

एहि सिद्धान्तनि स्थिरीकृत हुया, तब घटादिपुरुष आवरण नाशका यत्न नहि करके घटका उत्पत्तिके निमित्त काहे यत्न करते हैं ? जिस हेतु इह प्रकारके लोकव्यवहार देखनेमे आता है, उसिवास्ते उन्ह माननें होयगा, यो उत्पत्तिका पूर्वमें आहतरूपमें घट विद्यमान नहि था, अविद्यमान घटकाहि उत्पत्ति होता हय । इस्का उत्तरमे सिद्धान्तवादि जैन गियरोंने कहते हैं, आहत वस्तुका अभिव्यक्तिके निमित्त केवल आवरण विनाशकेवास्ते हि यत्न करने होयगा इस प्रकारके कोइ नियम नहि हय, अन्धकाराहत घटका अभिव्यक्तिके निमित्त जुला हुया प्रदीपमे ति अन्धकारका नाश यो घटका प्रकाशरूप दोय टी फल देखनेमे आता है, केवल आवरण विनाशकेवास्ते प्रदीप जुलाया नहि याता हैं ॥ ४ ॥

क्वचिदावरणविनाशेऽपि यत्न. स्यात् यथा कुड्यादि-विनाशे तस्मान्न नियमोऽस्ति अभिव्यक्त्यर्थिनावरण विनाश एव यत्न कार्य्य इति । नियमार्थत्वाच्च । कारणे वर्त्तमान कार्य्यं कार्य्यान्तराणामावरणमित्य-वोचाम । तत्र यदि पूर्व्वाभिव्यक्तस्य कार्य्यस्य पिण्डस्य व्यवस्थितस्य वा कपालस्य विनाश एव यत्न क्रियेत । तदा विदलचूर्णाद्यपि कार्य्यं जायेत । तेना प्यावृतो घटोनोपलभ्यत इति पुन. प्रयत्नान्तरापेक्ष एव । तस्माद् घटाद्यभिव्यक्त्यर्थिनो नियत एव कारक

---

कोइ स्थानमे आवरण नाशके निमित्तमेभि यत्न किया याता है, जयसा प्राचीरावृत घटका अभिव्यक्तिका निमित्त प्राचीर तोडनेकु यत्न किया जाता है। उसिवास्ते कहते हैं, केवल आवरण भङ्गका निमित्तइ यो यत्न करने होयगा, अयसा नियम नहि हय। कहा हुया है, अभिव्यक्त कार्य्य अनभिव्यक्त कार्य्यका आवरण। इसि हेतु घटका अभिव्यक्तिका निमित्त मृत्पिण्ड वा कपालका विनाश निमित्त इह सिद्धान्त करनेसे मृत्पिण्ड या कपालका विनाशमे चूर्णरूप कार्य्यान्तरभि उपजने शक्ते हय। योकि कार्य्यमेति आहत रहनेसे घटका उपलब्धि होने शक्ता नहि, इसि वास्ते घटका अभिव्यक्ति निमित्त दण्डचक्रादिरूपकारक समूहका व्यापार इरदम् अपेक्षित हुया है और भि घटका अभिव्यक्ति काय्य सम्पादन करके कारकका व्यापार भि सार्थकता लाभ

व्यापारोऽर्थवान् । तस्मात् प्रागुत्पत्तेरपि सदेव कार्य्यं अतीतानागतप्रत्ययभेदाच्च । अतीतो घटोऽनागतो घट इत्येतयोश्च प्रत्ययोर्व्वर्त्तमानघटप्रत्ययवन्न निर्व्विषयत्वं युक्तम् । अनागतार्थिप्रवृत्तेश्च । न ह्यसत्यर्थितया प्रवृत्तिर्लोके दृष्टा । योगिनां चातीतानागतज्ञानस्य सत्यत्वादसच्चेद्भविष्यद्घट ईश्वरस्य भविष्यद्घटविषयं प्रत्यक्षं ज्ञानं मिथ्या स्यात् । न च प्रत्यक्षमुपचर्य्यते । घटसद्भावे ह्यनुमानमवोचाम । विप्रतिषेधाच्च ॥ ५ ॥

---

करते हय । इह सम्पूर्ण युक्तिमें ति उत्पत्तिका पूर्व्वमें कार्य्यका विद्यमान रहना सिद्धान्तहि स्थिर हुया । घट होता है, एहि वर्त्तमान घट विषयक ज्ञानका न्याय घट होयगा वो घट हुयाथा, एहि प्रकार भविष्यत वो अतीत घट विषयक ज्ञान, विषयके सहित प्रकाश पाता है । यदि अतीत वो भविष्यत अवस्थामें वस्तु नहि रहे, तब वर्त्तमान अवस्थाका न्याय विषयका अवभास होता नहि । एहि युक्तिसे ति उत्पत्तिका पूर्व्वमे कार्य्यका सत्ता प्रमाणित होता है । यो कहो भविष्यत अवस्थामें वस्तु नहि रहे, तब आकाशकुसुमका आहरणका न्याय घटकेवास्ते भि कोई पुरुष प्रयत्न करता नहि । यो यगत् भावि घटकावास्ते लोकका प्रवृत्ति देखनेमे आता है, तब मानने होयगा यो, भावि घटभि अनभिव्यक्तरूपमें विद्यमान रहता है । यो कहो भविष्यत घट असत्स्वरूप होय, तब ईश्वर वो योगिगणका वोई घट विषयक

यदि घटोभविष्यतीति कुलालादिषु व्याप्रिय माणेषु घटार्थं प्रमाणेन निश्चितम् । येन च कालेन घटस्य सम्बन्धोभविष्यतीत्युच्यते तस्मिन्नेव काले घटोऽसन्निति । विप्रतिषिद्धमभिधीयते । भविषान् घटोऽसन्निति न भविष्यतीत्यर्थं । यत्र घटो न वर्त्तत इति यद्वत् । अथ प्रागुत्पत्तेर्घटोऽसन्नित्युच्येत घटार्थं प्रवृत्तेषु कुलालादिषु तत्र यथाव्यापाररूपेण वर्त्तमानाभावत् कुलालादयस्तथा घटो न वर्त्तत इत्य

---

प्रत्यक्षज्ञानभि मिथ्या होय गये । योगी वो ईश्वरका ज्ञानक्षु मिथ्या कहा नहि जाय सक्ता है । जिस हेतु वोहि ज्ञान सिवाय दुसरा प्रबल ज्ञान नहि हय, जिससेति वह वाधित होयगा ॥ ५ ॥

यो कहो, अतीत वो भविष्यत कालमें असत् वस्तु विषयक भावमें योग प्रभावमें ईश्वर वो योगीका प्रत्यक्षज्ञान उत्पन्न होता हय, तब यह कहा हुया युक्तिमें ति अतीत वो भविष्यत अवस्थामेंभि वस्तुका विद्यमानता अनुमित हयगा अयसाहि कहेंगे । ( ओहि अनुमान प्रदर्शन करते हय । ) कुम्भकार प्रभृति कारक सम्पूर्ण क्षु व्यापृत देखकर घट होयगा, अयसा निश्चय सर्व्वसाधारणका होता हय । घट होयगा, इह वाक्यमें ति भविष्यत कालका सहित घटका सम्बन्ध कथित होता हय । उसि कालमें घटका सत्ता नहि हय यह बात समूह असङ्ग... अयसा वर्त्तमान

घटतु विद्यमान[illegible] वाक्य

सच्छब्दस्यार्थश्चेन्न विरुध्यते कस्मात् स्वेन हि भविष्यद्रूपेण घटो वर्त्तते ? न हि पिण्डस्य वर्त्तमानता कपालस्य वा घटस्य भवति । न च तयोर्भविष्यत्ता घटस्य । तस्मात् कुलालादिव्यापारवर्त्तमानताया प्रागुत्पत्तेर्घटोऽसन्निति न विरुध्यते । यदि घटस्य यत् सम्भविष्यत्ता कार्य्यरूप तत्प्रतिषिध्येत तत्प्रतिषेधे विरोध स्यात् । न तु तद्भवान् प्रतिषेधति ॥ ६ ॥

---

हय, उसि प्रकार, यो घट होयगा, सो भविष्यत् कालमे असत्, इस बातभि सङ्गत नहि हय । यादि बौद्ध कहते हय, घट निर्माण के निमित्त जिस् प्रकार कुलालादिका व्यापार दिखाई आता हय, उत्पत्तिका पूर्व्वमे घट उसि प्रकार, अर्थात् स्वप्रयोजनसाधनक्षमरूपमे विद्यमान नहि रहनई असत् शब्दका अर्थ हय, ईहई कहेंगे । सिद्धान्तवादी जैन कहते हय । तुम जिस प्रकारसे असत् शब्दका अर्थ करते हो, वह हमारे मतमेभि विरुद्ध नहि हय । जिस हेतु उत्पत्तिका पूर्व्वमे घट अनभिव्यक्त अवस्थामे रहते हय, इसिवास्ते उसि अवस्थामे प्रयोजनसाधनकु सक्षम होता नहि हउ, भविष्यद्रूपसे रहता हय । तत्कालमे मृत्तिका वा कपालका वर्त्तमानता रहनेमेभि कोहि वर्त्तमानता घटका होता हय नहि, इसि प्रकार घटका भविष्यत्ताभि उस लोगका होता हय नहि । तुम घटका उत्पत्तिका पूर्व्वमे भविष्यत्ता स्वीकार नहि करनेसे तुमारे सहित हमारा मतका विरोध होता । तुम उह स्वीकार करनेमे मतभेद भया नहि ॥ ६ ॥

न च सर्व्वेषां क्रियावतामेकैव वर्त्तमानता भविष्यत्त्वं वा अपि च चतुर्विधानामभावानां घटस्येतरेतराभावो घटादन्यो दृष्टो यथा घटाभावः पटादिरेव न घटस्वरूपमेव। न च घटाभावः सन् पटोऽभावात्मकः किन्तर्हि भावरूप एव। एवं घटस्य प्राक्प्रध्वंसात्यन्ताभावानामपि घटादन्यत्वं स्यात्। घटेन व्यपदिश्यमानत्वात् घटस्येतरेतराभाववत्। तथैव भावात्मकता अभावानाम् एवञ्च सति घटस्य प्रागभाव

---

सम्पूर्ण क्रियावान् पदार्थकाहि भविष्यता, वर्त्तमानता वो अतीतत्व विभिन्न, एक नहि हय, जिस् हेतु घटका विद्यमानता समयमे घटका भविष्यता देखनेमे आता है, विद्यमानता देखने में नहि आता है, इसिवास्ते उह व्यक्तिभेदमे विभिन्नहि मानने होयगा। घटादि कार्य्य उत्पत्तिका पूर्व्व में एवं विनाशका परभि असत् नहि हय। इह विषयमे औरभि युक्ति दिया याता है। अभाव चार प्रकार, प्राक्भाव (उत्पत्तिका पूर्व्वकालीन भाव) ध्वंस (विनाश) अत्यन्ताभाव (सर्व्वकालीनाभाव) वो अन्योन्याभाव (भेद) इह चार प्रकारके अभावके बिचमे (अन्योन्याभाव) अर्थात् घटका अन्य पट, इह स्थानमे पटमे घटका यो भेद प्रतीत होय, उह पटस्वरूप, भाव पदार्थ, घट स्वरूप नहि हय, इसि प्रकार घटका प्राक्भाव प्रध्वंस वो अत्यन्ताभाव वी भावपदार्थ, घटकास्वरूप नहि हय। जिस् हेतु घटका प्राकभाव कहनेसे या इह बात कहनेसे घट वो प्राक्भाव इह

इति न घटस्वरूपमेव प्रागुत्पत्तेर्नास्ति । अथ घटस्य प्रागभाव इति घटस्य यत् स्वरूपं तदेवोच्येत । घटस्येति व्यपदेशानुपपत्तिः । अथ कल्पयित्वा व्यपदिश्येत शिलापुत्रकस्य शरीरमिति यद्वत् । तथापि घटस्य प्रागभाव इति कल्पितस्यैवाभावस्य घटेन व्यपदेशो न घटस्वरूपस्यैव ॥ ७ ॥

---

दोनोंका एक सम्बन्ध प्रतीति होता हय सम्बन्ध व्यक्ति दोईमे रहता हय, इसिवास्ते घट वो उसका प्राक्भाव एक पदार्थ होने नहि सक्ता हय, जयसा चैत्रका पुत्र अयसा बात कहनेसे, चैत्र वो पुत्रका एकठो सम्बन्ध ज्ञान होकर विभिन्नताका प्रतीति होता हय, घट उसिका प्राक्भावस्वरूप कहनेसे उसरूप सम्बन्ध प्रतीति होता नहि । यो कहो शिलापुत्रका शरीर, इसि प्रकार प्रयोग करनेसे, शिलापुत्र वो शरीरका भेद नहि रहनेसेभि, कल्पना करके भेद व्यवहार होता हय, उसि प्रकार घटका प्रागभाव, इह व्यवहारभि काल्पनिक भेदकु अवलम्बन करकु होयगा, उह होनेसे कल्पित भावकाहि घटका सहित सम्बन्ध व्यवहृत होता हय । इह बात मानने होयगा । सत्यहि घट अभावस्वरूप नहि हय, घटका प्राक्भाव अभिव्यक्तावस्थ घटसेति भिन्न पदार्थ, निश्चय भया । इह अवस्तमे इह विचारणा यो, घटका प्रागभाव अनन्तोनन्त भावका न्याय अतिशय विभिन्न, क्या सूक्ष्मरूपमे कारण विलीन घटस्वरूप ? बहुत भेद स्वीकार करनेसे घटका कारण मृत्पिण्ड व्यतिरिक्त काठ पाषाणादि यो कोई पदार्थमेभि घटका प्रागभाव रहने शक्ता हय, इष्टापत्ति करनेसे उसिसे घटोत्पत्तिका प्रसङ्ग

अथार्थान्तर घटाद्वटस्याभाव इत्युक्तोत्तरमेतत् । किञ्चानात् प्रागुत्पत्तेः शशविषाणवद्भावभूतस्य घटस्य स्वकारणसत्तासम्बन्धानुपपत्तिः । द्विनिष्ठत्वात् सम्बन्धस्यायुतसिद्धानामदोष इति चेत् । न । भावाभावयोरयुतसिद्धत्वानुपपत्तेः । भावभूतयोर्हियुतसिद्धतायुतसिद्धता वा स्यान्नतु भावाभावयोरभावयोर्व्वा तस्मात् सदेव कार्य्यं प्रागुत्पत्तेरिति नियमः ।

होता हय, जिस हेतु प्रागभाव रहनेसे अवश्यहि कार्य्योत्पत्ति होनेका नियम हय। द्वितीय कल्प स्वीकार करनेसे अस्मदभिमत सत्कार्य्यवादहि निर्व्विरोधमे तुमाराभि स्वीकार हुवा ॥ ७ ॥

सत्कार्य्यवाद औरभि युक्त होयगा, यो कहो उत्पत्तिका पूर्वमे घट अभावस्वरूप होय, सो होनेसे यो प्रकार शशकशृङ्ग असत् पदार्थ हेतु कोइ पदार्थमेभि सयुक्त होता नहि हय इसि प्रकार असत् घटभि स्वकारण मृत्पिण्ड वा कपालका सहित सम्बन्ध होय नहि सक्ता हय, जिस हेतु सम्बन्ध दोय सत्पदार्थमे रहता है। असत्पदार्थमे रहता नहि हय। यो कहो, संयोगसम्बन्धका प्रति इह नियम हय, समवायसम्बन्धका प्रति ईह नियम नहि हय। इह बात असङ्गत। जिस हेतु भाव वो अभाव, समवाय सम्बन्ध, समवायवादिका मतमे स्वीकार भया हय नहि, भाव पदार्थ दोनोमे संयोगकी न्याय समवायसम्बन्ध मानना हुवा हय, भावाभावमे किम्वा अभाव दोनोमे उह रहता नहि हय, तुमारा मतमे कारणका सहित कार्य्यका समवाय सम्बन्ध माना हुवा हय, इसिवास्ते थोहि अनुरोधमे सत्कार्य्यवाद तुमारा मतमेभि

"सदेव सौम्येति मुत्युक्तास मृषात्वेन ब्रह्मणः शून्याभावापत्ते असन्नेव स भवति असद्ब्रह्मेति वेद चेत्। अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद सन्तमेनं ततो विदु"रित्यतासद्वादिन निन्दित्वा सद्वादी प्रसूयति तन्न पीडेत। येन जीवाजीवादीनष्टपदार्थान् सत्त्वासत्त्वादिविरुद्धधर्मयोगिन. वर्णयन्ति कथञ्चित् सत् कथञ्चिदसत् कथञ्चित् सदसदित्येवमादिना सप्तभङ्गीन्यायेन ॥ ८॥

इति भाषासारजैनसिद्धान्तरत्ने प्रथमखण्डे
सत्कार्यवादनामा प्रथमः पादः ॥

---

सिद्ध होता हय। हे सौम्य सृष्टिके पूर्व मेंभि इय जगत् वर्त्तमान था, इत्यादि वेदकि उक्ति मिथ्या होनेसे सत्त्वसे जगतका सत्वे कि अभावसे शून्याभाव मालुम पड़ता हय। आओर पृथिवी वर्त्तमान नहि था इत्यादि वेदवाक्यके अनुसरण करनेवाले असद्वादिका निन्दा करके सद्वादि यो मत प्रकाश करते हय उयभि सम्पूर्ण नष्ट हो याता हय। इसनोक अर्थात् जैनशिष्यवर्ग, सत्तासत्तादि विरुद्ध धर्म्म जीव आओर अजीवादि अष्ट पदार्थका वर्णना करते रहते है। उन लोक योलते है कि कुछ सत् आओर कुछ असत् प्रभृति सप्तभङ्गी नायके सहायतासे अष्ट पदार्थका प्रमाण किया याता हय ॥ ८ ॥

इति भाषासारजैनसिद्धान्तरत्ने प्रथमखण्डे सत्कार्य्यवादनामक प्रथम पाद।

# द्वितीय पाद ।

इदानीं बुद्धमतं निराक्रियते। तत्र बुद्धमुनेर्वै भाषिक सौत्रान्तिक योगाचारमाध्यमिकाख्याश्चत्वारः शिष्याः। तेषु बाह्यं सर्व्वोऽप्यर्थः प्रत्यक्ष इति वैभाषिकः। बुद्धिवैचित्र्यादर्थोऽनुमेय इति सौत्रान्तिकः। अर्थशून्यं विज्ञानमेव परमार्थसत् बाह्यार्थस्तु स्वप्नतुल्य इति योगाचारः। सर्व्वं शून्यमिति माध्यमिक इत्येवं ते मतानि दधुः। भावपदार्थः सर्व्वत्र क्षणिकः। तत्रादौ भूतभौतिकश्चित्तचैत्यश्चेति समुदायद्वयं मन्यते। तथाहि रूपविज्ञानवेदनासञ्ज्ञासंस्काराख्याः पञ्च स्कन्धा भवन्ति। तेषु खरस्नेहोष्णचलन-

---

तिस बाद बौद्ध मत निराकरण होता है। बौद्धमुनिका चार शिष्य,—वैभाषिक, सौत्रान्तिक, योगाचार वो माध्यमिक। वैभाषिकका मतमे बाह्यवस्तु मात्रहि प्रत्यक्ष। सौत्रान्तिकके मतमे वस्तुमात्रहि बुद्धिका वैचित्र्यसे ति अनुमेय। योगाचारका मतमे वस्तुमात्रहि असत्। विज्ञानहि एकमात्र परमार्थभूत सत्‌वस्तु। बाह्य वस्तु सम्पूर्ण स्वप्नका अयसा मिथ्या। माध्यमिकका मतमे सम्पूर्णहि शून्य। बौद्धसम्प्रदायका अयसाहि मत हय, भाव पदार्थहि क्षणिक तिसके विचमे भूतभौतिक वो चित्तचैत्य, एहि दोनो (समुदाय)। स्वीकृत होते हय। उक्त मतमे, रूप, विज्ञान, वेदना, सञ्ज्ञा, वो संस्कार एहि पाचठो

खभावा. पार्थिवाद्यश्चतुर्व्विधा. परमाणवः पृथिव्यादिभूतचतुष्टयरूपेण सङ्घन्यन्ते। तच्च चतुष्टयश्च देहेन्द्रियविषयरूपेणेति स एष भूतभौतिकात्मरूपस्कन्धो बाह्यसमुदाय.। अहंप्रत्ययसमारूढो ज्ञानसन्तानो विज्ञानस्कन्ध.। स एष कर्त्ता भोक्ता चात्मा। सुखवेदना दु खवेदना च वेदनास्कन्धः। देवदत्तादि नामधेय संज्ञास्कन्ध। रागद्वेषमोहादिश्चैतसिको धर्म्म संस्कारस्कन्ध.। त एते चत्वारः स्कन्धाश्चित्तचैत्तिका. कथ्यन्ते। सर्व्वव्यवहारास्पदत्वेन चान्तः सङ्घन्यन्ते। तदयमान्तर. समुदायश्चतुस्कन्धरूप.। इदमेव समुदायद्वयमशेषं जगत्। एतदन्यदाकाश-

---

स्कन्ध। खरस्वभाव, स्नेहस्वभाव, उष्णस्वभाव वो चलनस्वभाव एहि चार प्रकार पार्थिवादि परमाणु सम्पूर्णहि पृथिव्यादि भूत चारोंरूपमें परिणत होता हय। उक्त भूतचारोंहि फेर देह इन्द्रिय वो विषयरूपमें प्रकाश होता हय। रूपस्कन्ध, भूत भौतिकात्मक बाह्यवस्तु। अहं प्रत्यय, समारूढ ज्ञान समूहई विज्ञानस्कन्ध। आत्मा कर्त्ता वो भोक्ता सुखवेदना वो दुःख वेदनाहि वेदनास्कन्ध। देवदत्तादिसंज्ञाहि संज्ञास्कन्ध। राग, द्वेष वो मोह प्रभृति चित्तका धर्म्महि संस्कारस्कन्ध। एहि चारोंहि स्कन्धका साधारण नाम चित्तचैत्तिक। सम्पूर्ण व्यवहारका आस्पदरूपमें उह सब अन्तरमें मिलित होता हय। इसवास्ते एहि आन्तर समुदाय हि चतुस्कन्धरूप। उक्त समुदायद्वयई

द्विकमवस्तुभूतमिति । अत्र संशयः । एषा समुदायद्वयकल्पना युक्ता न वेति । एतेनैव जगद्व्यवहारोपपत्तेर्युक्तेति प्राप्ते प्रतिविधत्ते ॥ १ ॥

योऽयमुभयसंघातहेतुक उभयविध समुदायो निरूपितस्तस्मिन् स्वीकृतेऽपि तदप्राप्तिर्जगदात्मकसमुदायासिद्धि । समुदायिनामचेतनत्वादन्यस्य च संहन्तु स्थिरचेतनस्याभावात् । स च भावक्षणिकत्वाङ्गीकारात् । सुत प्रश्नस्वीकृतौ तत्सातत्यप्रसङ्ग' । तस्मादयुक्ता तत्कल्पना ॥ २ ॥

---

लेकर अर्थात् जगत् । एतद्भिन्न आकाशादि पदार्थ अवस्तुभूत । इस स्थानमे संशय यहि । उक्त समुदायद्वयका कल्पनायुक्त अथवा अयुक्त ? इसमेंति जगद्व्यवहारका उपपत्ति अयुक्त उक्त कल्पना युक्तहि होता हय इसि प्रकार पूर्वपक्षका खण्डनाय भगवन्त प्रतापचन्द्र प्रभृतिगणोंने प्रमेय कमल मार्त्तण्डादि ग्रन्थमे कहते हय ॥ १ ॥

ईह यो उभय संघातहेतुक उभयविध समुदाय निरूपित हुवा है, तत्स्वीकारमेभि तिस्का अप्राप्ति अर्थात् जगदात्मक समु दायका असिद्धि होता है । समुदायहि सम्पूर्णका अचेतनत्व एवं तदस्तु स्थिर चेतन संघातका अभाव अयुक्तहि मोहि दोष घटता है । जिस् हेतु उक्त मतमे सर्व वहि भाव क्षणिक अङ्गीकृत हुवा हय । स्तत प्रश्न का स्वीकारमेभि तत्सातत्यप्रसङ्ग होता हय । इस वास्ते तत्कल्पना अयुक्तहि होता हय ॥ २ ॥

ननु सौगतसमये विद्यादयोमिथो हेतुफल-भावमापन्ना' स्वीक्रियन्ते अप्रत्याख्येयाश्च ते सर्व्वेषां तेषु च मिथस्तथाभावेन घटीयन्त्रवत् सन्ततमावर्त्त-मानेष्वर्थाचित सङ्घातस्तमन्तरेणैषामसिद्धेः । ते चाविद्यासंस्कारो विज्ञानं नाम रूपं षडायतनं स्पर्शो वेदना तृष्णोपादानं भवो जातिर्जरा मरणं शोकः परि-देवना दुःखं दुर्मनस्ता चेति तत्राह । अविद्यादीनां परस्परहेतुत्वादुपपन्नसङ्घात इति यदुक्तं तन्न । कुत उपपत्तीति । तेषां पूर्व्वंपूर्व्वमुत्तरोत्तरस्योत्पत्ति-

---

यो कहो सौगत समयमे अर्थात् बौद्धमतमे अविद्यादि पदार्थ सम्पूर्ण परस्पर हेतुभाव वो फलभाव प्राप्त होता हय, इस प्रकार स्वीकृत होते हय। वह सम्पूर्णकाहि अप्रत्यक्षहि होता हय। जिस हेतु उन लोगके परस्पर हेतु फल भावसेति घटी यन्त्रवत् सन्तत आवर्त्तमान् सोहि सम्पूर्ण पदार्थका सङ्घात अथर्मे ति आश्रित होता है। सङ्घात बिना अविद्या प्रभृतिका असिद्धि होता हय। अविद्या, संस्कार, विज्ञान, नाम, रुप, षडायतन, स्पर्श, वेदना, तृष्णा, उपादान, भव, भव, जाति, जरा, मरण, शोक, परिदेवना, दुःख, दुर्मनस्ता, इह सम्पूर्णकाहि नाम सङ्घात। तद्विषयमे कहते हय अविद्यादिका परस्परहेतुत्व प्रयुक्त सङ्घात उपपन्नहि होता हय। इसि प्रकार यो कुछ कहा याता हय, उह सङ्गत होता हय नहि। कारण, उह लोगका पूर्वपूर्व उत्तरोत्तर उत्पत्ति मात्रहिका कारण होता हय, किन्तु

कार्य्य तर्हि यौगपद्य कार्य्यकारणयो सद्भावस्थिति स्यात् कार्य्यानुसूतस्योपादानत्वात्। तथाच भाव क्षणिकत्वमतभङ्ग । तस्मान्नासत. तदुत्पत्ति.। दीपस्येव घटादेर्निरन्वय विनाश मनान्तं न दूषयति ॥४॥

भावाना धीपूर्व्वकोध्वस प्रतिसख्यानिरोध । तद्विलक्षणस्त्वप्रतिसख्यानिरोध । आवरणाभावमात्रमाकाशम्। एतत् त्रय निरुपाख्य शून्यमिति यावत्। तदन्यत् सर्व्वं क्षणिक। यदुक्तम्। बुद्धिबोध्य त्रयादन्यत् सस्कृत क्षणिकञ्चेति। तत्राकाश परन्त

---

उत्पन्न कार्य्यकुभि असत्हि कहने होता हय, उपादान, कार्य्यका अनुसूतहि रहता हय। योहि अनुसूत उपादान यो असत नहि होकर सत्हि होय सो होनेभि कार्य्य यो उपादानमे ति उत्पन्न होता, सो उपादानके सहित सबदाहि एकत्र अवस्थान करता इसिवास्ते भावक्षणिकत्व मतकाभि भङ्ग होता। इहि वास्ते असत्सेतिभि सतका उत्पत्ति कोइ प्रकारसे ति स्वीकार्य्य होय नहि शङ्का है इस वाद यो सब दीपके माफ़ घटादिका निरन्वयरूपका विनाश स्वीकार करते है, उह सोगके मतमे दोषारोप करते है ॥ ४ ॥

भावसम्पूणका बुद्धिपूर्व्वक [illegible] सका नाम प्रतिसख्यानिरोध इसि प्रकार उसिका विपरीतताई अप्रतिसख्यानिरोध। आवरणाभाव मात्रहि आकाश, ईह तिनो निरुपाख्य अयात् शून्य। इसभिन्नाय अवर सम्पूर्ण क्षणिक। कहा गया ह निरोधद्वयहि

निराकरिष्यति । निरोधे तावन्निराकाकरोति प्रति-सङ्ख्येति । एतयोर्निरोधयोरप्राप्तिरसम्भवः स्यात् । कुतः अविच्छेदात् । सतोनिरन्वयविनाशाभावात् । अवस्थान्तरापत्तिरेव सतोद्रव्यस्योत्पत्तिर्विनाशश्च । अवस्थाश्रयो द्रव्य स्वेक स्थायीति । न च दीपनाशस्य निरन्वयत्ववीक्षणादन्यत्रापि तथास्त्विति वाच्यम् । अवस्थान्तरापत्तेरेवान्यत्र नाशत्वे निश्चिते दीपेऽपि तस्या एव तत्त्वेन निर्णेयत्वात् । अनुपलम्भस्त्वति-सौक्ष्म्यादेव । सद्वस्तुनो निरन्वयविनाशस्तर्हि क्षणा-नन्तर विश्व निरुपाख्य मभ्येत् च न भवेन्नैवमस्ति । तस्मादनुपपन्न सः ॥ ५ ॥

---

आकाश ईह तिनो पदार्थसेति भिन्न परमाणु सो पृथिवी प्रभृति पदार्थ सम्पूर्ण बुद्धिगम्य सो क्षणिक । तिस विचमे आकाश पिछु निराकृत होयगा । इस वखत् निरोधद्वयई निराकृत होता है । अविच्छेद हेतु अर्थात् सद्वस्तुका निरन्वय विनाशका अभाव हेतु उक्त निरोध दोनोका अप्राप्ति अर्थात् असम्भव होता है । अवस्थान्तरापत्तिई सत् द्रव्यका उत्पत्ति । विनाश सो अवस्था-श्रय । एक द्रव्यहिका स्थायी । दीपनाशका शून्यत्व दर्शनका प्रमाद अपरा कहा नहि याय अथवा है । पनाव अवस्थान्तरा-पत्तिई सो नाशरूपमे निर्णीत हुया । तव दीपमेभि अवस्थान्तरा-पत्तिभि निश्चय करने होता है । अतिसूक्ष्मत्व प्रयुक्तहि उसका उपलब्धि होता एव नहि । सद्वस्तुका विनाश यो, उसका शून्यत्व

अथ तदभिमतां मुक्तिं दूषयति। योऽयं संसारहेतोरविद्यादेर्निरोधो बौद्धैर्मोक्षोऽभिमतः। स किं साक्षात्तत्त्वज्ञानात् स्यात् स्वयमेव वा? नाद्यः निर्हेतुकविनाशस्वीकारवैयर्थ्यात्, नेतरः साधनोपदेशवैयर्थ्यादित्युभयथापि विचारासहत्वात् तदभिमतो मोक्षोऽपि न सिध्यति। आकाशस्य निरुपाख्यत्वं निरस्यते। आकाशे या निरुपाख्यताभिमता सा न सम्भवति। कुतः अविशेषात्। इह श्येन उत्पततीति

---

हि होता, जो होनेसे तमकोभि क्षणान्तरमें विभञ्ज शूनाहि देखने पाते इसि प्रकार तुमभि निजमेंभि नहि रहते इस प्रकार कभिभि घटना नहि होता हय। इसिवास्ते कहा हुआ मत-अनुपपन्नहि होता हय वा अयोगत्र होता है ॥ ५ ॥

इस के बाद तदभिमत मुक्तिमेंभि दोषारोप करते है। बौद्धगणोंने संसार हेतु अविद्यादिका निरोध कोहि जो मोक्ष विवेचना करते है, सो मोक्ष क्या तत्वज्ञानसेहि होता हय या आपसे होता हय? उसको तत्वज्ञान निमित्तक कहा नहि जाय सक्ता है। कारण, उस होनेसे निर्हेतुक विनाश अर्थात् अप्रतिसङ्ख्यानिरोधका स्वीकार व्यर्थ होता हय। द्वितीय पक्षभि सङ्गत होता है नहि कारण आपसे मोक्ष होता है कहनेसे, साधनोपदेश निरर्थक होय जाता है। इस प्रकारसे उभय पक्षहि विचारासह होता हय। इस वास्ते तदभिमत मोक्षभि सिद्ध होता हय नहि। इस के बाद आकाशका निरुपाख्यत्व

प्रतीत्या तत्रापि पृथिव्यादिवद्भावरूपत्वात् गन्धादिगुणानां पृथिव्यादिवस्त्वाश्रयत्ववीक्षणाच्छब्दगुणस्याप्याकाशो वस्तुभूत एवाश्रय इत्यनुमानाच्च। "वायुराकाशसंश्रय" इति त्वदुक्तासङ्गतेश्च। अपि च आवरणाभावमात्रमाकाशमिति न शक्यं वक्तुं नीरूपत्वात्। तथाहि न तावत् प्रागभावादिवयमाकाश.। पृथिव्यादेरावरणस्य सत्त्वे न। तदप्रतीतिप्रसङ्गात् विश्वं निराकाशं स्यात्। आकाशस्य सत्त्वेन पृथिव्याद्यप्रतीति

---

निरास करते हैं। आकाशमें यो शून्यता अभिमत हुवा है सो अविशेषयशत उहभि सम्भव नहि होता हय। आकाशमे ईरन पक्षी उडता हय। इह प्रकारका प्रतीति हेतु आकाशमेभि पृथिव्यादिके नयाय भावरूपत्व दृष्ट होता हय काहके इसि तरह गन्धादिगुण जिस प्रकार पृथिव्यादि वस्तुकु आश्रय कर रहता है, उसि तरह शब्दगुण आकाशरूप वस्तुको आश्रय कर रहता है याहके, विशेषरूप "वायुराकाशसंश्रय" इह तुमारा निजोक्तिका असङ्गति होता हय काहके पृथिव्यादि वस्तुका सहित आकाशका कोई विशेष नहि रहनेसेह आकाशकु शून्य कहने नहि याय सक्ता है। अवरभि अयौक्तिकत्व प्रयुक्त आवरणाभावमात्रहि आकाश, इह प्रकारभि कहा नहि जाय सक्ता है। जिस हेतु आकाशकु प्रागभावादि अभावचयका मध्यमे निर्देश करा नहि जाता है। पृथिव्यादिका आवरणका सत्ता हय। आकाश यो कोईकाभि आवरणाभाव अर्थात् कोईका आवरण नहि

प्रसङ्गाच्च। नाप्यन्योन्याभाव तस्य तत्तदावरणगतत्वेन तन्मध्याकाशाप्रतीतिप्रसङ्गादिति यत्किञ्चिदेतत्। यच्चावरणाभावस्तदाकाशमिति चेत्तर्हि वस्तुभूतमेव तत् आवरणाभावेन विशेषितत्वात् तस्मात् पृथिव्यादिवद्भावभूतमेवाकाश न तु निरुपाख्यम्। अत्र भावस्य क्षणिकत्व दूषयति। पूर्व्वानुभूतवस्तुविषया धीरनुस्मृति। प्रत्यभिज्ञेति यावत्। समस्त वस्तु

---

हय, इस प्रकारके अभाव पदार्थ, भी होनेसे, उह पृथिव्यादिका आवरण होने नहि गणा भया। इसिवास्ते विश्व आकाश रहित होय गया आकाशका सत्ता स्वीकारमे सहसका अप्रतीति निबन्धन पृथिव्यादिकाभि अप्रतीतिका प्रसङ्ग होता हय। उह आवरणाभावरूप आकाशकु अन्योन्याभावभि कहा नहि जाय गणा हय कारण उक्त अन्योन्याभाव पृथिव्यादिका आवरणकाहि अन्तगत कहके पृथिव्यादिका मध्यगत आकाशका अप्रतीति प्रसङ्ग होता है वा घटता है। इह सम्बन्धमे और अधिक कहना निष्प्रयोजन। जिसमे आवरण नहि रहे, उसको यो आकाश कहा याय, सो होनेसेभि उह आकाशका वस्तुभूतत्वहि अर्थात् भावत्वहि होता है कारण, आकाश आवरणाभावरूप एकहि विशेष वस्तु, अयसाहि सिद्ध होता है। इसवास्ते आकाश अभाव नहि होयके पृथिव्यादि भावपदार्थका सदृश एकठो भावपदार्थ हि होता है। उह शून्य वा अवस्तुभूत नहि हय। इस बाद भाव पदार्थका क्षणिकत्व पक्षमे दोष दिखाते है।

तदेवेदमिति पूर्व्वानुभूतमनुसन्धीयतेऽत क्षणिकत्वं भावस्य न। न च सेयं गङ्गा तदिदं दीपार्चिरितिवत् सादृश्यनिबन्धना न तु वस्त्वैकनिबन्धना सेति वाच्यं सादृश्यग्रहीतुरेकस्य स्थायिनो भावेन तद्योगात्। किञ्च बाह्ये वस्तुनि कदाचित् संशयं स्यात्तदेवेदं तत्सदृशं वेति आत्मनि तूपलब्धरि न कदाचित् अन्यानुभूतेऽन्यस्य स्मृत्यसम्भवात्। न च सन्तानैक्य

---

पूर्व्वानुभूतवस्तुविषयिणी बुद्धिका नाम अनुस्मृति। अनुस्मृति शब्दसे प्रत्यभिज्ञाहि बोधित होय मालुम करणा चाहिये। ईह सोहि पूर्व्वानुभूत वस्तु हि, एहि प्रकार संसारमें सम्पूर्ण वस्तुका हि पूर्व्वानुभूतत्व अनुसन्धित होता हय। इसवास्ते भाव पदार्थ कभिभि क्षणिक होय नहि सक्ता है। "सोइ एइ गङ्गा" "सो एहि दीपशिखा" इत्यादि प्रतीतिके सदृश प्रत्यभिज्ञामात्रहि सादृश्यनिबन्धना, ऐक्यता निबन्धना नहि हय, इस प्रकार कहा नहि जाय सक्ता है। एकठो स्थायी वस्तु विना सादृश्यग्रहीता का इसि प्रकार पूर्व्वानुस्मृतिका ज्ञानहि होय नहि सक्ता है। अवरभि बाह्यवस्तुमें कभि न कभि, ईह क्या सोहि है, अथवा तत् सदृश हय, ईस प्रकारसे सन्देह होय सक्ता, किन्तु उपलब्धि कर्त्ताका आत्मामें सन्देह होने नहि सक्ता है। अपर कर्त्तृक अनुभूत वस्तुमें अपरका अनुस्मृति असम्भव हय। सन्तान अर्थात् ज्ञानाधार ऐक्यताको हि यो सोहि बुद्धिका नियामक कहा

ज्ञानगतेन तदाकारेणानुमीयत इति। अथोभयसाधारणदोषमाह ॥ ७ ॥

एवं भावक्षणिकतया सदुत्पत्तौ स्वीकृतायामुदासीनानामुपायशून्यानामप्युपेयसिद्धि स्यात् क्षणभङ्गवादे भावमात्रस्य परक्षणस्थित्यभावादिष्टानिष्टाप्तिपरिहारयोर्लौकदृष्टयोरहेतुकत्वमतोऽनुपायवतामपि तत्प्राप्ति स्यात्। उपेयलिप्सु, कश्चिदपि कुत्राप्युपाये न प्रवर्त्तेत स्वर्गाय मोक्षाय वा न कोऽपि प्रयतेत। न चैवमस्ति सर्व्वस्याप्युपेयार्थिन सोपायता तथैवोपेय

---

तदाकारसे अनुमेय कहा नहि जाता है। इसवाद उभय साधारण दोष दिखाते हैं ॥ ७ ॥

इसि प्रकारसे भाव पदार्थको क्षणिक कहनेसे, असत्सेति सत्का उत्पत्तिका स्वीकार करने होता हय। सो होनेसे उपायशून्य उदासीनका उपेयसिद्धि स्वीकार्य्य होता हय। क्षणभङ्गवादमें भाव पदार्थ मात्रकाहि उत्पत्तिका परक्षणमें स्थितिका अभाव प्रयुक्त इष्टका स्वीकार अनिष्टका परिहाररूप लोक दृष्ट हेतु निरर्थक होता हय। सो होनेसे, उपायहीन व्यक्तियोका इष्टप्राप्ति घटता हय। इसिवास्ते अपर कोईभि उपेय लिप्सु होकर कभिभि कोई उपायसें कोइ प्रवृत्त होयगा नहि। कोईभि स्वर्ग वा मोक्षके निमित्त चेष्टा करेगा नहि। किन्तु अयसा देखनेमे नहि आता हय। सम्य नहि उपेयलिप्सु होकर तिस निमित्त चेष्टा करते हैं। इसि प्रकार उपायसेंति उपेय

लाभस्य प्रतीयते । तस्माद्विश्वप्रतारणार्थमेतयो प्रवृत्तिः । यौ किल भावभूतस्कन्धहेतुका समुदायोत्पत्ति स्वीकृत्यापि पुनरभावाद्भावोत्पत्तिमूचतुः क्षणिकानामप्यात्मनां स्वर्गापवर्गसाधनानुष्ठानादिदिशतुरिति तुच्छस्तत्सिद्धान्त । तदेव वैभाषिके सौत्रान्तिके च निरस्ते । विज्ञानमात्रवादी योगाचार प्रत्यवतिष्ठते । बाह्ये वस्तुन्यभिनिवेशमानाना केषाञ्चिच्छिष्याणामनुरोधेन बाह्यार्थप्रक्रियेयं सुगतेन रचिता । तस्या न तस्याशय. विज्ञानस्कन्धमात्रतात्पर्य्यात् । तथाहि विज्ञेयो घटाद्यर्थं विज्ञानान्नातिरिच्यते । तस्यैवार्थाकार-

---

लाभ दिखाई जाता है । इसवास्ते लोकप्रतारणार्थहि उह लोगका प्रवृत्ति कहने होयगा । यो लोग भावभूत स्कन्धहेतुक समुदायोत्पत्ति स्वीकार करकेभि पुन अभावसेंहि भावोत्पत्ति कहते हैं, अवरभि क्षणिक आत्माका स्वर्ग वो मोक्षका साधन सम्पूर्णका उपदेश करते है, उह लोकका सिद्धान्त अतीव तुच्छ होता है । इसि प्रकारसे वैभाषिक वो सौतान्त्रिक निरस्त होते भये । इस अवुत विज्ञानमात्रवादि योगाचारका मत निराकरण निमित्त प्रकरणान्तर आरम्भ करते हैं । बाह्य वस्तुमे अभिनिविष्ट कोई कोइ शिष्यका अनुरोधसे सुगत मुनि एह बाह्यार्थ प्रक्रिया रचना करते भये । किन्तु ईस प्रक्रियामे उनका अभिप्राय दृष्ट होता क्य नहि । जिस हेतु विज्ञानस्कन्ध-

त्वात्। न चार्थान् विना व्यवहारासिद्धि तान् विनापि स्वप्नवत् सिद्धे। वाह्यार्थास्तित्ववादिनापि ज्ञाने अर्थाकारत्वधर्मोऽवश्य मन्तव्य। कथमन्यथा घटज्ञान पटज्ञानमिति व्यवहारोपपत्ति। तथाच तेनैव तत्सिद्धौ किमर्थं.। ननु कथमान्तर ज्ञान घटपर्व्वताद्याकारत्वाम्। नैवम्। ज्ञान किल प्रकाश मानम्। निराकारस्य तस्य प्रकाशासम्भवात् साकार-

सावहि अनर रूपम् सम्यक्का तात्पर्य्य दिखनेमे आता है। विशेय घटादि पदार्थ विज्ञानसे ति अतिरिक्त नहि है। कारण, विज्ञानहि अर्थाकारमे परिदृष्ट होता हय। अथवा अयव्यतिरेकमे व्यवहार सिद्धि सम्भव होता हय नहि। अर्थ व्यतिरेकमे व्यवहारका सिद्धि स्वप्नका सदृश।। वाह्यार्थका अस्तित्व यो लोग स्वीकार करते है उह लोग्काभि ज्ञानमे अर्थाकारत्व धर्म्म अवश्य स्वीकार्य्य। अन्यथा घटज्ञान पटज्ञान, इस प्रकारसे व्यवहारहि उपपन्न होता हय नहि। ज्ञानसे ति यो व्यवहारका सिद्धि भया, सो होनेसे वाह्यवस्तुका अङ्गीकारका कोईभि प्रयोजन दिखाई आता हय नहि। सुद्र मनकास्थित आन्तर ज्ञान किस प्रकारसे घट वो पर्व्वतादि आकारसे प्रकाशित होता हय ईह प्रकारभि आशङ्का किया जाय नहि शक्ता है। कारण, ज्ञान प्रकाशमान वस्तु। यो निराकार, उस्का प्रकाशभि सम्भव होता हय नहि। ईसिवास्ते योहि ज्ञानका साकारत्वहि स्वीकार्य्य होता हय। यो कहो, वाह्यवस्तु नहि रहनेमे बुद्धिका

मेव तत् । ननु कथमसति वाह्येऽर्थे धीवैचित्रम् । वासनावैचित्र्याद् भवेत् । वासनाहेतुकस्य तद्वैचित्र्यस्यान्वयव्यतिरेकाभ्यामवधारणात् । ज्ञानज्ञेययो सहोपलम्भनियमादपि न ज्ञेय ज्ञानाद्भिन्नम् । किन्तु ज्ञानात्मकमेवेति । इह संशय । सर्व्वं ज्ञानात्मकमिति युज्यते न वेति स्वप्नवद्विनाप्यर्थान् ज्ञानेनैव व्यवहारसिद्धे' पृथक् तदङ्गीकारे फलानतिरेकाच्च युज्यत इति प्राप्ते वाह्यार्थस्याभावो न शक्यो वक्तुम् । कुत' ? उपलब्धे । घटस्य ज्ञानमित्यादौ ज्ञानान्य-

---

वैचित्र्य किस प्रकारसे घटेगा, तदुत्तरमे वक्तव्य ईह हयगा, वासनावैचित्र्यमे ति बुद्धिका वैचित्र्य होता हय । अन्वय वो व्यतिरेकमे ति वैचित्र्यका वासनाहेतुक कहकेड स्थिर किया जाता हय । अवरभि, ज्ञान वो ज्ञेयवस्तुका सहोपलम्भ नियमसे ति ज्ञानवस्तुका ज्ञेयवस्तुमे ति अभेदसिद्धान्तित होता हय । ज्ञेयवस्तु ज्ञानात्मक हि जानना । इह स्थलमे संशय यदि हय, सम्पूर्ण वस्तुकोहि ज्ञानात्मक कहना युक्त वा अयुक्त ? स्वप्नकातुल्य अर्थ भिन्न व्यवहारसिद्धि देखनेसे एव कहिये इसि प्रकार उसको पृथक कहके स्वीकार करनेसेभि फलका अनतिरेक दिखाई होनेसे ज्ञानात्मक कहनाहि युक्त होता है ईसि प्रकार पूर्व्व पक्षके उत्तरमे कहते है । जिससे प्रतिनियतहि उपलब्ध होता है, तब् वाह्य वस्तु वो नहि हय, इह प्रकार कहा नहि याय सक्ता है । घटका ज्ञान इत्यादि

स्यार्थस्योपलम्भात् । न चोपलब्धमपलपन ग्राह्या वाक् प्रेक्षावताम् । न च नाहमर्थं नोपलेभे अपितु ज्ञानान्नोपलभे इति वाच्यम् । उपलब्धिवलेनैव तदन्यताया गत्ते निपातनात् । घटमहं जानामीत्यादौ ज्ञाधात्वर्थम् सकर्मक सकर्तृकञ्च सर्व्वोलोक प्रत्येति प्रत्याययति चान्यान् । तेन ज्ञानमात्र साधयन सकलोपहासहेतुरिति भिन्नोऽर्थो ज्ञानात् ॥ ८ ॥

---

ध्यानमेहि ज्ञानसेति अतिरिक्त बाह्यवस्तुका उपलब्धि होता है । यो प्रत्यक्षका अपलाप करते है, उनका कहना कभिभि ज्ञानियोंके निकट ग्राह्य होने नहि सक्ता है । हम बाह्य उपलब्ध अर्थ उपलब्धि-नहि करते है, इस तरहभि कहनेभु नहि सका याता है । कारण बाह्य अर्थ उपलब्धि-नहि करते हय -अयसा कहने सेहि ज्ञानातिरिक्त बाह्य अथकाहि उपलब्धि नहि करते हय इहई प्रतिबोधित होता भया । सत्कालमे उभि प्रकारका ज्ञान अनिमार्य्य । हम् घटकु जानते हय एहि वाक्यसे सम्पूर्णहि ज्ञाधातुका अय सकर्मक वो सकर्तृक उपलब्धि करते है इसि प्रकार अवर कोभि उपलब्धि करावते है ज्ञाधातुका अयसेति ज्ञानमात्रहि वाधित होनेसे पूर्व्वमत्त सवहिका उपहासास्पद होते हय । इसवास्ते उक्त वाक्यस्य अर्थपदज्ञान भिन्नहि ज्ञान करावते है ॥ ८ ॥

ननु ज्ञानान्यच्चेद् घटादिस्तस्य प्रकाश क्व ज्ञाने चेत् तर्हि एकस्मिन् सर्व्वस्य प्रकाश स्यात् अन्यत्वाविशेषादिति चेन्न । तद्भिन्नेऽपि तस्मिन् यत्र विषयताख्यः सम्बन्धस्तस्यैव नानास्येति व्यवस्थानात् । पीतरक्तादिविषयकसमूहालम्बनस्य विलक्षणनानापीताद्याकारासम्भवाच्च । यत् तु सहोपलम्भनियमादर्थो ज्ञानात्मेति तदसत् साहित्यस्यार्थभेदहेतुकत्वात् ।

---

यो कहो, ज्ञानसे ति भिन्न वस्तु घटादि उसका प्रकाश किसमें ज्ञानहि होयगा ? जिसमें तु वह प्रकार स्वीकार करनेसे एक घटका ज्ञानमें निखिल वस्तुकाहि आभास स्वीकार करने होयगा । कारण, घटादि निखिल वस्तुहि घटादिसेति भिन्न हय । ईह प्रकारसे युक्तिभि सङ्गत होय नहि गया है । जिस हेतु निखिल वस्तु ज्ञान भिन्न होनेसे भि घटादि यो विषयमें ज्ञान का विषयता सम्बन्ध स्थिर होयगा, सो विषयइ सोइ ज्ञानमें प्रकाश पावेगा, अवर कोई विषयई प्रकाश पावेगा नहि । इस प्रकार व्यवस्था हय । अन्यथा रक्तपीतादि विषयक समूहालम्बन ज्ञानका विरुद्ध नानापीतादि आकारभि सम्भव होय पड़ता है, किन्तु समूहालम्बन ज्ञानका नानात्मक सम्भावना दृष्ट होता हय नहि । कोई कोई कहते है, यव ज्ञान यो अर्थका एकठोर्के सहित अनरोकाभि उपलम्भ नियमित भया है तव अर्थ यो ज्ञान एकहि हय । किन्तु उह लोगका वह मत अयुक्त हय । कारण

ततश्च तयोस्तन्नियमो हेतुफलभावनिमित्तोमन्तव्यः। किञ्च बाह्यमर्थं निरस्यता सौगतेन तस्य पृथक् सत्त्वं स्वीकृतम्। यत्तदन्तर्ज्ञेय रूपं तद्वहिर्व्वदवभासत इति तदुक्तेः। अन्यथावत् करणासम्भवं। नहि वन्ध्यापुत्रो वन्ध्यापुत्रवदिति कश्चिदाचष्टे ॥ ८ ॥

अथ बाह्यार्थान् विनापि वासनाहेतुकेन ज्ञानवैचित्र्येण स्वप्ने यथा व्यवहार एव सर्व्वं जागरे अपि स्यादिति दृष्टान्तेन साधितं दूषयति। स्वप्ने मनो-

---

भोहि साहित्य भयसे ति ज्ञानका भेदहि मालुम करावता हय। इसवास्ते उह नियम, हेतुभाव वो फलभावका बोधक कहनेई समझना चाहिये। विशेषत सौगतमतावलम्बियोंने बाह्य वस्तुका निरास करती उसकाभि उसका पृथक सत्ता स्वीकार करती भये, कारण यो उसका अन्तवर्त्ती ज्ञेयरूप, उहई बाह्य वस्तुका न्याय प्रकाश पावता है, सौगत लोगका यदि निजका ऊक्तिकार भावगत 'यो सो भोहि' एह दोनो शब्दसेति बाह्यवस्तु पृथक सत्ता स्वीकार करना भया है। अन्यथा उह लोग 'बाह्यवस्तुका न्याय' ईस प्रकारके वाक्यहि प्रयोग करते नहि। वन्ध्यापुत्रकु कोईभि वन्ध्यापुत्रका न्याय इस प्रकार कोईभि कहते नहि हय ॥ ८ ॥

इस बाद बाह्य अथ व्यतिरेकहि वासना हेतुका ज्ञान वैचित्र्य सेति स्वप्नमे यो रूप व्यवहार होय, तद्रूप व्यवहार जाग्रत अवस्था

स्थे च यथा घटाद्यर्थाकारकज्ञानमात्रसिद्धो व्यवहारस्तथा जागरेऽपि भवेदित्येतन्न सम्भवति। कुतः वैधर्म्यात्। स्वप्नजागरप्राप्तयोर्व्वस्तुनोरसाधर्म्यादेव स्वप्ने खल्वनुभूतं स्मर्य्यते जागरे तु प्रत्यक्षेणानुभूयते। स्वप्नोपलब्धक्षणद्वयमात्रेणानाद् भवति बाधितश्च बोधे। जागरोपलब्धं तु वर्षशतानन्तरमपि तद्धर्मकमबाधितञ्चेति। किञ्च स्वप्नेऽनुभूतं स्मर्य्यत इति प्रत्युक्तिमात्र

मेभि होवे, इस प्रकारके यो मत दृष्टान्तसे ति प्रकाश किया गया है, इस वक्त उसमे दोषारोप करते हय। परस्पर वैधर्म्मता वशत स्वाप्निक वो जाग्रत एकरूपता स्वीकृत होय नहि शक्ता है। स्वप्नमे मनोरथ घटादिका आकार वो आकारित ज्ञान मात्रसे ति सिद्ध व्यवहार जिस प्रकार, जाग्रत अवस्थामेभि व्यवहार तद्रूप, अयसा कहाभि नहि जाता है। कारण, स्वप्नका धर्म्म, जाग्रतका धर्म्मसे ति सम्पूर्ण विभिन्न। स्वाप्निक वस्तु वो जाग्रत वस्तुका परस्पर सद्धर्म्मता दृष्ट होता हय नहि। स्वप्नमे पूर्व्वानुभूतका स्मरण होता हय। किन्तु जाग्रत अवस्थामे प्रत्यक्षहि अनुभव होता हय। स्वप्न दृष्ट वस्तु सम्पूर्ण क्षणद्वयके बीचमेहि अन्यरूप होता हय। इसि प्रकार स्वप्नागममे वह बाधितभि होय शक्ता हय, किन्तु जाग्रत दृष्ट वस्तुका उह प्रकारके रूपान्तर नहि होता हय। उह आजभि यो प्रकार हय शत वरष बादमेभि उसि प्रकार रहता हय, इसि प्रकार बाधितभि नहि होता है, अपर एक बात, इह स्थानमे स्वप्नमे पूर्व्वानुभूत वस्तुकाहि स्मरण होता हय, इह

बोध्य । सुप्तन्तु स्वप्नावानुभाव्य तावन्मात्रसमय वस्तु स्वप्ने परेश सृजतीति सन्ध्ये सृष्टिराहहीत्यादिना वेदान्तसूत्रे वक्ष्यते ॥ १० ॥

यत् तूक्तं विनाप्यर्थान् वासनावैचित्र्याज् ज्ञान वैचित्र्यमुपपद्यत इति तन्निरासायाऽवासनाना भावो न सम्भवति । कुत ? अनुपलब्धे । तन्मते बाह्यार्था-प्राप्ते । अर्थमूला किल वासनार्थान्वयव्यतिरेकसिद्धा । तव त्वर्थानङ्गीकारात् सा न सम्भवेत् । किञ्च वासना नाम सस्कारविशेष । सा च स्थिरमाश्रय विना न

---

यो उनि उह मतुरकि मालहि मालुम करणा चाहिये । सूत्रकार वेदव्यासका निप मत अयथा नहि हय । वेदान्तसूत्रमे "सन्ध्ये सृष्टिराहहि" आपना मत प्रकाश करे है इसका अथ स्वप्नमे यो कुछ देखा याय, उह ततकालमे परमेश्वर कर्तृक सृष्ट होय रहता है इह प्रकार कहे है ॥ १० ॥

अर्थ व्यतिरेकमेभि वासना वैचित्र्यवशत ज्ञानवैचित्र्य उपपन्न होता हय इह प्रकारके यो वादी कहे है उसिका निरास करना होता है । अनुपलब्धता हेतु वासनाका सत्ताहि स्वीकार करनेकु नहि सका जाता है । पूर्व्व पक्षीका मतमे बाह्यार्थहि नहि हय, वासना अर्थमूलकमात्र । अर्थ रहनेसे हि वासना रहता है, अर्थ नहि रहनेमे वासनाभि नहि रहता है इसवास्ते बाह्यार्थका अभावमे वासनाका अस्तित्वहि असम्भव होय पड़ता

समस्तीत्याह । वासनाश्रय स्थिरपदार्थो नैव तेऽस्ति । कुत ? क्षणिकत्वात् । प्रवृत्तिविज्ञानस्यालयविज्ञानस्य च सर्वस्य क्षणिकत्वाङ्गीकारात् । नहि त्रिकालस्थिरसम्बन्धिनि चेतनेऽसति देशकालनिमित्तसापेक्षवासनाध्यानस्मरणादिव्यवहार. सम्भवेत् । तथा चाश्रयाभावान्न सा तदभावाच्च न तद्वैचित्र्यमिति तुच्छो विज्ञानमात्रवाद ॥ ११ ॥

एव योगाचारेऽपि निरस्ते सर्वशून्यत्ववादी

---

है । विशेष हेतु वासना संस्कारविशेष । स्थिर आश्रय विना उसका सत्ता कभिभि सम्भव होय नहि सक्ता है । पूर्व्वपक्षीका मतमे सम्पूर्ण पदार्थहि क्षणिक । सम्पूर्ण पदार्थहि यद्यपि क्षणिक भया, तब वासनाका आश्रय स्वरूप स्थिर पदार्थहि रहा नहि । उह लोग यो प्रवृत्तिविज्ञान यो आलयविज्ञान स्वीकार करते है, उह दोनोकोभि क्षणिक कहे है । त्रिकालसम्बन्धि चेतन पदार्थका सत्ता स्वीकार नहि करनेसे देशकाल निमित्त सापेक्ष वासना, ध्यान वा स्मरणादि कोई व्यवहारहि सम्भव नहि होय सक्ता । इसवास्ते पूर्व्वपक्षीका मतमे तादृश आश्रयका अभावमे वासनाहिका अभाव घटता है । वासनाका अभावमे वासनावैचित्र वा तद् हेतु ज्ञानवैचित्र कोइकाभि सम्भव होता हय नहि वा होने नहि सका इसवास्ते इह सिद्धान्तपाट तुच्छहि होता है ॥ ११ ॥

इसि प्रकार योगाचारका मत निरस्त करके 'सर्व्वस्मिन्

माध्यमिकः प्रतिपद्यते। बुद्धेन वाह्यार्थान् विज्ञानं स्वाङ्गीकृत्य विनेयबुद्ध्यारोहाय सोपानवत्तत्र क्षणिकत्वादि कल्पितम्। न तु ते तत्त्वं वर्त्तन्ते। शून्यमेव तत्त्वं। तदापत्तिरेव मोक्ष इत्येव तन्मतरहस्यम्। युक्तञ्चैतत्। शून्यस्याहेतुसाध्यत्वेन स्वतः सिद्धेः। सतो हेत्वपेक्षिणोऽप्युत्पत्त्यनिरूपणाच्च। तथाहि न तावद्भावादुत्पत्तिः सतः। अनष्टाद्बीजादितोऽङ्कुरादुत्पत्त्यदर्शनात्। नाप्यभावात्। नष्टाद्बीजा-

---

शून्यवादी माध्यमिकका मत खण्डन करते हैं। बुद्धमुनि बाह्य अर्थ वो विज्ञान अङ्गीकार करके विनेयबुद्धिमें आरोहण निमित्त सोपानके न्याय उक्त लोगका क्षणिकत्वादि कल्पना करे हैं। किन्तु माध्यमिकका मतमें क्या बाह्यार्थ, क्या विज्ञान, कुछभि नहि हय। यहि मतमें शून्यहि तत्त्व, एवं सोहि शून्यापत्तिहि मोक्ष। इहह यहि मतका रहस्य। उक्त लोगका वक्ष्यमाण प्रकारसे स्वमतका यौक्तिकताई प्रदर्शन करते रहते हैं। उक्त लोक कहते हैं, शून्य अहेतु साध्य, इसवास्ते स्वतः सिद्ध। यो स्वतः सिद्ध सोई तत्त्व। शून्यहि तत्त्व। सद्वस्तु कारणापेक्षि होनेसे भि उसका उत्पत्तिका निरूपण नहि होता हय। कारण, भाव पदार्थ से ति सद्वस्तु उत्पत्ति कहा नहि याय सक्ता हय। बीज नष्ट नहि होनेसे उससे अङ्कुरका उत्पत्ति देखनेमें नहि आता हय। अवरभि अभावमेंसे उसका उत्पत्ति कहा नहि जाय सक्ता हय या कहना

द्वितीजातस्याङ्कुरादेर्निरूपाख्यतापातात् । न च स्वत । आत्माश्रयतापत्तेरानर्थक्याच्च । न तु परतः । परत्वाविशेषेण सर्व्वस्मात् सर्व्वोत्पत्तिप्रसङ्गात् । एवमुत्पत्त्या-भावाद्विनाशा-भावः । तस्मादुत्पत्ति-विनाशसदसदादिकं विभ्रममात्रमतः शून्यमेव तत्त्व-मिति । इह संशय । शून्यमेव तत्त्वमिति युक्तं न वेति ? शून्यस्य स्वतःसिद्धेरितरेषां पदार्थानां भ्रान्ति-विजृम्भितत्वेनासत्त्वाच्च युक्तमिति प्राप्ते निरस्यति ।

---

नहि चाहिये। नष्ट बीजादिसे जात अङ्कुरादिका होना सम्भव होनेसे मिथ्यात्वहि प्रतिपादित भया। आपहिसे अङ्कुरादिका उत्पत्ति कहा नहि जाय सक्ता हय, कारण सो होनेसे आत्माश्रय दोष अनिवार्य्य होय पडता हय इसितरह आनर्थक्यभि घटता है। परसेति उत्पत्ति स्वीकारभि किया नहि जाय सक्ता है। जिस हेतु उह स्वीकारसे परत्वका अविशेषतावशत सम्पूर्ण वस्तुसेति सम्पूर्ण वस्तुका उत्पत्ति प्रसङ्ग होता है। इह प्रकारसे उत्पत्तिका अभावसे विनाशकाभि अभाव होता हय। इसवास्ते उत्पत्ति विनाश, सत् वो असत् प्रभृति सम्पूर्णहि भ्रमात्मक। शून्यहि एक मात्र तत्त्व। इहमे संशय यहि यो माध्यमिकका शून्यहि एक मात्र तत्त्व, इह मत युक्त वा अयुक्त ? शून्यो यो स्वत सिद्ध तथ तदतिरिक्त पदार्थमात्रहि यथ भ्रान्ति विजृम्भित तब उह युक्तहि होता है। पूर्व्वपक्षीका यहि प्रकार सिद्धान्तका खण्डनार्थं कहते

शून्यमिति वदन् भावमभावं भावाभावं वा प्रतिपादयेत् । सर्व्वथा नाभिमतसिद्धि । कुत ? अनुपपत्तेरयुक्तत्वात् । तथाहि आद्येऽनिष्टापत्ति, द्वितीये प्रतिपादयितुर्भावस्य तत्साधनस्य च सद्भावात् सर्व्वशून्यताहानि । तृतीये तु विरोधो अनिष्टता चेति । किञ्च येन प्रमाणेन शून्यं साध्यं तस्य शून्यत्वे शून्यवादहानि, तस्य सत्यत्वे सर्व्वसत्यताप्रसङ्गश्चेति दुष्ट शून्यवाद । एवं मिथोविरुद्धविमतीनिरूपणाज्जगत्

---

है। सर्व्वथा अनुपपत्ति प्रयुक्त उक्त अयुक्तहि होता है। क्योंकि शून्य भाव यथा अभाव अथवा भावाभाव ? ए तिनोंका कोइठोंभि प्रतिपादन किया नहि जाता है। उस्का यो कुछ प्रतिपादनका चेष्टा किया जायगा, उसिमें अभीष्टसिद्धिका हानि होयगा। कारण, उस्का कोइठोंभि युक्त होता हय नहि। शून्यभावरूपत्वका आदौ अस्वीकारहेतु उस्का तादृशत्व स्वीकार प्रथमपक्षमें अनिष्ट होता हय। द्वितीयपक्षमें शून्यका अभावरूपत्वका स्वीकार प्रतिपादनका ताकाभि तत्साधनका अस्तित्ववशत सर्व्व शून्यताका हानि होता है। एव तृतीयपक्षमेंभि विरोध वो अनिष्टापत्ति उभयहि घटता है। अधिकन्तु यो प्रमाणसेंति शून्यका साधन किया जायगा उस्का शून्यमें शून्यवादका हानि एव उस्का सत्यत्वमें सर्व्व सत्यता प्रसङ्ग घटता हय कहके शून्यवाद दुष्ट होता है। इसि प्रकारका परस्पर विरुद्ध मतद्वयका निरूपणमें बुद्धका जगत्

प्रतारकता बुद्धस्यावमीयते। लोकायतिकादिमतादि खतितुच्छत्वाद्भगवच्चन्द्रसूरिभिः प्रत्याख्यातुं नोद्दङ्कितानीति वेदितव्यम्। एतेन बौद्धनिरासेन तत्सदृशो मायी च निरस्तः। क्षणिकत्वमनुसृत्य दृष्टिसृष्टिवर्णनात् शून्यवादमाश्रित्य विवर्तनिरूपणाच्च तस्य तत्सादृश्यम् ॥ १२ ॥

इति भाष्यसारजैनसिद्धान्तरत्ने प्रथमखण्डे बौद्धनिरासनामा द्वितीयः पादः ॥

---

प्रतारकताई अनुमित होता है। लोकायतिकादिका मत अति तुच्छ करके भगवान् चन्द्रसूरि प्रभृति तत्प्रत्याख्यानका उद्यम नहि करे हैं। इससे मालुम करने होयगा मायावादी अद्वैतवादी वेदान्तिकोंने बौद्धका क्षणिकत्वपक्षका अनुसरणसे दृष्टिपूर्वक सृष्टि वर्णना करे हैं। उह सब शून्यवादका आश्रयसे विवर्त्तवाद निरूपण करते हैं काहेसे उह लोगका बौद्धके सहित सादृश्य देखा जाता हय। इसवास्ते मायावाद यो बौद्धके सदृश सो स्थिर रहता है ॥ १२ ॥

इति भाष्यसारजैनसिद्धान्तरत्ने बौद्धनिरास नामक द्वितीय पाद ॥

---

दत्त्वा विद्यौषध भक्तान् निरवद्यान् करोति य ।
दृक्पथ भजतु श्रीमान् प्रीत्यात्मा ऋषभ स्वयम् ॥

पूर्व्वमस्या अवसर्पिण्या सप्त कुलकरा बभुवुस्तेषु सप्तमोनाभिनामा कुलकरस्तस्य भार्य्या मरुदेवी बभूव तत्पुत्रो भगवान् ऋषभदेव । पुनश्च तस्मिन् समये तेनैव भगवता युगलधर्म्मोनिवारित । पुनश्च वर्णादिविभागश्च कृत । तस्य भरतबाहुबलिप्रभृतय सुता बभूवु । पुनश्च ब्राह्मी सुन्दरी द्वे पुत्र्यौ स्त । ताभ्या सर्वा कला प्रदर्शिता । एवञ्च भगवान् प्रजापति क्रमेण च राज्य परिभुज्य भरतस्य अयोध्याराज्य दत्त्वा बाहुबलयेच तक्षशिलाराज्य दत्त्वा अनेकपाञ्च अष्टा-

---

प्रथम इस अवसर्पिणी कालमे सात कुलगर होते भए तिनोमे सप्तम नाभिनामा कुलगर तिसकी भार्य्या मरुदेवी तिस माताका कुक्षिमे ऋषभदेव भगवान् उत्पन्न भए। फिर उस समयमे युगल धर्म्म दूर करके चारवर्णोका स्थापना किया। भगवानके भरतादि शतपुत्र होते भए। फेर ब्राह्मी सुन्दरी दोय पुत्री होता भई उनको निम्बन कलाका आदि लेके कला सब दिखाई। इसरे भगवान् प्रजापतिने सब्व व्यवहार नीतिमार्ग चलाया क्रमसेती राज्य परिभोग करके भरतको अयोध्याका राज्य देकरके बाहु

नवतिपुत्राणां स्वनाम्ना देशांश्च दत्त्वा भगवान् दीक्षां लली तदैव भगवता चतुर्थमनपर्यायज्ञानमुत्पन्नं पुनश्च केवलज्ञानोत्पत्त्यानन्तर तीर्थस्थापना कृता। एवञ्च भगवान् धर्म्मं प्रकटीकृत्य अष्टापदाद्रौ अर्थात् कैलासगिरौ निर्व्वाणं प्राप। अस्य विशेषचरित्रविज्ञानं इच्छावद्भिः कल्पसूत्रस्य वृत्तौ कल्पद्रुमकलिकायां विज्ञेयं। यथा ऋषभदेवस्य चरित्रं तथैव श्रीअजितनाथस्यापि भगवतो विज्ञेयं धर्मस्थापने विसंवादो नास्ति। पुनश्च सर्व्वेऽपि तीर्थंकराः स्वयं सम्बुद्धा भवन्ति। एवञ्च क्रमेण चतुर्विंशतिः तीर्थंकराः मोक्षमार्गस्वरूपकाः बभूवुः एषां धर्म्मप्ररूपणायां परस्परं विसंवादो नास्ति। इत्थेवं सर्व्वेऽपि मनान्ति ॥ १ ॥

---

वनिता नगरीमां राजा देके फेर अष्टानवति पुत्रोंको अपने अपने नामसे देश देके दीक्षा लेते भए। उसी वख्त चतुर्थ ज्ञान उत्पन्न भया। फेर केवल ज्ञान उत्पत्तिके अनन्तर चतुर्विध तीर्थ स्थापना किया। इसारे भगवान् धर्म प्रकट करके अष्टापदगिरि पर निर्वाण प्राप्त भए इनोका विशेषचरित्र कल्पसूत्रका टिप्पिमे जानना। जैसा ऋषभ देव स्वामीकी चरित्र धर्माधिकारमें है तेसेहा अजित भगवानकाभी जानना तीर्थकर सब स्वयं बुद्ध होते हैं ज्ञानादि मोक्षमार्ग प्ररूपणामें विसंवाद नहि है सर्व्व एकरूप मोक्षमार्ग मानते हैं ॥ १ ॥

पदार्थौ द्विविधः । जीवोऽजीवश्चेति । तत्र जीवश्चेतनः कायपरिमाणः सावयवः । अजीवः पञ्चविधः धर्माधर्मपुद्गलकालाकाशभेदात् । गतिहेतुर्धर्मः । स्थितिहेतुरधर्मश्च व्यापकः । वर्ण गन्ध रस स्पर्शवान् पुद्गलः । स च द्विविधः परमाणुस्तत्सङ्घातश्च वायुग्निजलपृथिवीतनुभुवनादिकः । पृथिव्यादिहेतवः परमाणवो न चतुर्विधाः किन्त्वेकस्वभावाः । स्वभावपरिणामात्तु पृथिव्यादिरूपो विशेषः । कालस्त्वतीतादिव्यवहारहेतुरणुश्च । आकाशस्त्वेको अनन्तप्रदेशश्चेति । तदेवं षोडश पदार्था द्रव्यरूपस्तदात्मकमिदं जगत् । तेषु चाणुभिन्नानि पञ्चद्रव्या-

---

पदार्थ द्विविध। जीव वो अजीव। तन्मध्यमे जीव चेतन शरीरपरिमाण वो सावयव। अजीव पञ्चविध, यथा धर्म, अधर्म, पुद्गल, काल वो आकाश। यो गतिहेतु सोहि धर्म, यो स्थितिहेतु सोहि अधर्म। सोहि अधर्म व्यापक। जिस्का वर्ण, गन्ध, रस वो स्पर्श हय, उहई पुद्गल। पुद्गल परमाणुरूप वो तत्सङ्घातरूप ए दो विध। वायु, अग्नि, जल, पृथिवी वो भुवनादि का नामहि सङ्घात। पृथिवीका कारण सम्पूर्ण चार प्रकार नहि हय, उह एक प्रकार। उह लोगका परिणति विशेष विशेष वस्तु। अतीतादि व्यवहारका निदानइ काल। सोहि काल अणुरूप। आकाश एक वो अनन्त प्रदेश। एह षड्विध पदार्थहि

ऽस्तिकाया इत्याख्यायन्ते । जीवास्तिकाय. धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय. पुद्गलास्तिकायः आकाशास्तिकायः इति । अस्तिकायशब्दोऽनेकदेशवर्त्तिद्रव्यवाची । जीवस्य मोक्षोपयोगितया बोध्यान् सप्त पदार्थान् वर्णयन्ति । जीवाजीवास्रवसम्वरनिर्जरबन्धमोक्षा इति । तेषु जीवः प्रागुक्तो ज्ञानादिगुणकः । अजीवस्तद्भोग्यजातम् । आस्रवत्यनेन जीवो विषयेष्विति आस्रव इन्द्रियसङ्घात । सम्वृणोति विवेकादिकमिति सम्वरो अविवेकादिः । निःशेषेण जीर्य्यत्यनेन कामक्रोधादिरिति निर्जर. । केशलुञ्चनतप्तशिलारोह-

---

द्रव्यरूप । निखिल जगत हि तदात्मक । तिसमें पञ्च, भिन्न अपर पांचठोहि द्रव्य अस्तिकाय पदहि आख्यासे आख्यात होता हय । वह सोगका नाम यथाक्रमसे जीवास्तिकाय, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय पुद्गलास्तिकाय वो आकाशास्तिकाय । अनेकदेशवर्त्ति द्रव्यादि अस्तिकाय शब्दसे अभिहित होता हय । इह मतमे जीवका मोक्षोपयोगी सातठो पदार्थ स्वीकृत भया हय । वोहि सात पदार्थ यथा—जीव, अजीव, आस्रव, सम्वर, निर्जर, बन्ध वो मोक्ष । तिसमें जीवका स्वरूप पूर्व्वमें कहा गया हय, जीव ज्ञानादिगुणसमन्वित । जीवका भोग्य पदार्थहि समुँ अजीव । जीव जिससेति विषयमे अभिनिविष्ट होते हय, सो इन्द्रिय समुदायका नामहि आस्रव । जिससेति विवेक आहत

घादि । कर्माष्टकोपादितो जन्ममरणप्रवाह
बन्ध ॥ २ ॥

तदष्टक चैव । चत्वारि घातिककर्माणि पाप-
विशेषरूपाणि यै ज्ञानदर्शनवीर्य्यसुखानि स्वाभा
विकान्यपि जीवस्य प्रतिहन्यन्ते । चत्वारि त्वघाति-
कर्माणि पुण्यविशेषरूपाणि यैर्देहसस्थानतदभि-
मानतत्कृतसुखदु खापेचोऽपेचासिद्धि । स्वशास्त्रोक्त-
साधनैस्तदष्टकादिमुक्तस्याविर्भू त-स्वाभाविकात्मरूपस्य
जीवस्य सद् ऊर्द्ध गतिरलोकाकाशस्थितिर्वामुक्ति ।

---

होता हय, सो अविवेकादि सम्बर नाम कहना हय। जिससे ति
काम क्रोधादि नि शेषमे क्षीण होय अथिका नाम निजर, यथा
शीयलुञ्छन ततशिलारोहणादि। कर्माष्टकमे ति अपादित जन्म
मरणका नाम बन्ध ॥ २ ॥

आठो कर्मके बिचमे चारठो पापविशेषरूप घातिक कर्म
एव चारठो पुण्यविशेषरूप अघातिक कर्म। घातिक कर्म
चारोठोमे ति जीवका स्वाभाविक ज्ञान दर्शन, वीर्य्य वो सुख
विनष्ट होते हय। और अघाति कर्मचारोसे ति जीवका देह
सस्थान, तदभिमान एव तत्कृत सुखमे वो दु खमे अपेचा वो
उपेचाका सिद्धि होय। स्वशास्त्रोक्तसाधनसमूहसे ति उक्त कर्मा-
ष्टकमे ति विमुक्ति लाभ होनेसे स्वाभाविक आत्मस्वरूपका आवि
र्भाव होता हय। तव जीव ऊद्ध गति प्राप्त होयके आलोकाकाशमे

सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्राख्य रत्नत्रय तत्साधनं । तानेतान् पदार्थान् सप्तभङ्गिना न्यायेनावस्थापयन्ति यथा स्यादस्ति १, स्यान्नास्ति २, स्यादवाक्तव्य ३, स्यादस्तिच नास्तिच ४, स्यादस्तिचाव्यक्तवाच्य ५, स्यान्नास्तिचाव्यक्तवाच्य६ स्यादस्तिचनास्तिचाव्यक्तवाच्येति७ ॥३

---

स्थित वा मुक्तिलाभ करते हैं। सम्यग ज्ञान, सम्यग दर्शन, सम्यक चारित्र एहि तिनो रत्नहि थोहि मुक्तिका साधन। जैन-धर्मावलम्बियतिगणोनें सप्तभङ्गी न्यायसे ति थोहि सम्पूर्ण पदार्थ संस्थापन करते हय। उक्त सप्तभङ्गी न्याय यथा स्यात् अस्ति यो कोइ तरे रहे, तव हय, एहि कथञ्चित अस्तित्वज्ञापक न्यायइ प्रथम न्याय। स्यान्नास्ति यो कोई तरह नहि रहे, तव नहि, एहि असत् विवक्षासूचक न्यायहि दुसरा न्याय। स्याद-व्यक्तव्य यो कोई तरे रहे, तव अव्यक्तव्य एहि क्रममें प्रथम वो द्वितीय उभय विवक्षामे तृतीय न्याय। स्यादस्तिच नास्तिच, यो कोइ तरह रहे, तव हय अथवा नहि हय, एहि युगपत् प्रथम वो द्वितीय उभय विवक्षामे चतुर्थ न्याय। सत्, असत्, एक कालमें बोलना असम्भव एहिठो समझा वनेवास्ते हि एहि चतुर्थ न्याय प्रवर्तित भया हय। स्यादस्ति चाव्यक्तव्य, प्रथम वो चतुर्थका विवक्षामें पञ्चम न्याय इसका अर्थ यो कोई तरह रहे, तव हय, अथच उह अव्यक्तव्य हि। स्यान्नास्ति चाव्यक्तव्य एहि द्वितीय वो चतुर्थका विवक्षामें षष्ठ न्याय। स्यादस्ति च नास्ति चाव्यक्तव्य यो कोई तरह रहे तो हय, यो कोई तरह नहि हय तव नहि

स्यादिति कथञ्चिदित्यर्थेऽव्ययं । सप्ताना नियमाना भङ्गा विद्यन्ते यस्मिन् प्रतिपाद्यतयेति सप्तभङ्गी । सत्त्वम् १, असत्त्वम् २, सदसत्त्वम् ३, सदसद्विलक्षणत्व ४, सत्त्वे सति तद्विलक्षणत्व ५, असत्त्वे सति तद्विलक्षणत्व ६, सदसत्त्वे सति तद्विलक्षणत्व ७, इतिवादिभेदेन पदार्थविषया सप्त नियमा भवन्ति । तद्भङ्गार्थमय न्याय । स च सर्वत्रावश्यक सर्व्वस्य पदार्थस्य सत्त्वासत्त्वनित्यत्वानित्यत्वभिन्नत्वाभिन्नत्वादिभिर्धर्मैरनैकान्तिकत्वात् ॥ ४ ॥

---

अथच अव्ययत्व छि । एहिठो प्रथम द्वितीय श्रो चतुर्थ विवक्षामे सप्तम न्याय ॥ २ ॥

एहि सप्तभङ्गी न्यायका स्यात् इकथचित अर्थमे अव्यय । जिसमे सप्त नियमका वा युक्तिका भङ्ग हय, उसिका नाम सप्तभङ्गी न्याय । सत्त्व, असत्त्व, सदसत्त्व सदसद्विलक्षणत्व, सत्त्व रहनेभि तद्विलक्षणत्व, असत्त्व रहनेभि तद्विलक्षणत्व, औरभि सत्त्व श्रो असत्त्व रहनेभि तद्विलक्षणत्व, इह प्रकार वादिभेदमे पदार्थ विषयमे सातठो नियम दिखाइ आवे हय । उसिका भङ्ग निमित्त एहि सप्तभङ्गी न्याय । इह सम्पूर्ण स्थानमे प्रयोजनीय हय । सम्पूर्ण पदार्थकाहि सत्त्व श्रो असत्त्व, नित्यत्व श्रो अनित्यत्व, एव भिन्नत्व श्रो अभिन्नत्व प्रभृति धर्म समूहसे ति अनैकान्तिकत्व अर्थात् अनिश्चयता होय कहनेहि एहि सप्तभङ्गी न्याय स्वीकार करने होयगा ।

तथाहि यद्येकान्ततोऽस्त्वसौ तर्हि सर्व्वदा सर्व्वत्र सर्वात्मनास्त्येवेति न तदीप्साजिहासाभ्यां कथञ्चित् कदाचित् कुत्रचित् क्वचित् प्रवर्त्तते निवर्त्तते वा। प्राप्तस्याप्राप्तत्वात् हेयहीनासम्भवाच्च। अनेकान्तपक्षे तु कथञ्चित् क्वचित् कदाचित् कस्यचित् केनचिद्रूपेण सत्त्वे हेयोपादानसम्भवात्। प्रवृत्तिर्निवृत्तिश्चोपपद्येत द्रव्यपर्य्यायात्मकं खिलु सर्व्वं वस्तु। तत्र सर्व्वात्मना सत्त्वादिकमुपपद्येत। पर्य्यायत्मनात्वसत्त्वादिकं पर्य्यायास्तु द्रव्यावस्थाविशेषाः।

---

कारण यो वस्तु एकान्तहि रहे, सो होनेसे, सर्व्वदा सर्व्वत्र सर्व्वप्रकारसे रहेगा। प्राप्ति इच्छा वा त्यागका इच्छासे ति कोईरूपसे कभिभि कहिंभि कोई प्रवृत्त वा निवृत्त होयगा नहि। जिस हेतु प्राप्तका वा अप्राप्तका एव हेय वस्तुका वो त्यागका असम्भावना प्रयुक्तहि औहि तरह होय रहता हय। अनेकान्त पक्षसे कोईरूपसे कहिंभि कभिभि कोईंसेभि कोई प्रकारसे सत्त्व रहनेसे उसका त्याग वा ग्रहणका सम्भावना होता हय। एव सो होनेसे प्रवृत्ति वा निवृत्तिभि उपपन्न होनेसे आता हय। सम्पूर्ण वस्तुहि द्रव्य पर्य्यायात्मक। 'द्रव्यस्वरूपसे सत्त्वादि सम्पूर्णहि उपपन्न होता हय। और पर्य्यायरूपसे असत्त्वादिका उपपत्ति होता हय। द्रव्यका अवस्थाका नामविशेषका नामहि पर्य्याय। पर्य्याय सम्पूर्ण भावात्मक वा अभावात्मक दोनोहि

तेषा भावाभावात्मकतया सत्त्वासत्त्वादेरुत्पत्तिरिति ॥ ५ ॥

इति भाषासारजैनसिद्धान्तरत्ने प्रथमखण्डे
जिनसूत्रनामा तृतीय पाद ॥

---

चतुर्थ पाद ।

सम्प्रति शिक्षिताभिमानिन केऽपि केऽपि विद्यारत्नमहानुभावभावुकास्तथाच पाश्चात्यशिक्षया सुशिक्षिता इङ्गलिस-ग्रन्थपाठानुकारिण अनुमानाभासचेष्टया इह जैनधर्म आधुनिकतया बौद्धधर्मस्य शाखैकावेति उक्तिमन्तेषा भ्रमनिरासनिमित्त

---

इसवास्ते उह भोगका सत्, वो असत्, उभयहि सम्पन्न होता हय ॥ ४।५ ॥

इति भाषासारजैनसिद्धान्तरत्ने प्रथमखण्डे
जिनसूत्रनामक तृतीय पाद ॥

---

अब शिक्षिताभिमानी केई मतोवाले विद्यारत्न महाशयादि इङ्गलिशादि ग्रन्थ पाठमें करनेवाले अनुमानाभास चेष्टा करके ऐसा कहते हैं कि जैन धर्म आधुनिक आउर बौद्ध धर्मका शाखासे निकले हैं । उनो के भ्रम निरास करनेकेवास्ते पुरातन

इह पुरातनजैनाचार्य्यभगवत्प्रतापचन्द्रप्रभृतिभि-र्न्याययुक्त्या बौद्धधर्म्मो निराकृतस्तथा जैनसमय-निरूपणाद्दिविधपण्डितमण्डलिना मध्ये व्यास-वाक्यानुरूपामृतकल्पगिरया जैनधर्म्म अनादिज्ञानोत्-पन्न कृतादियुगेष्ववस्थित इदानीमप्यस्ति,भाविकाले-ऽपिस्थास्यत्यनुरक्तानुभवतो यस्यैवयोग्ये विवेचितेऽपि कुशल अस्माकमेव श्रम सफलोजात इति मन्यामहे। स्मृतौच—यत्र देवो महाराजस्तत्रोपायात्सुरान्वित । सभाया तस्य वेनस्य प्रविवेश स पुण्यवान् । तं दृष्ट्वा समनुप्राप्त वेन प्रश्न तदाकरोत्। भवान् कोऽसि

---

प्रतापचन्द्र प्रभृति आचार्यो ने न्याययुक्ति करके बौद्धधर्म्मका खण्डन किया है। तथाच जैन समय निरूपणा करनेवाले पण्डितगणो के मध्यमे व्यासवाक्यानुरूप अमृततुल्यवाणी करके जैन धर्म्म अनादि ज्ञानोत्पन्न है ऐसा कहा है कृतादि युगमेभि था उसका प्रमाण स्मृतिमे लिखा है अयाभि है भविष्यत् मे होगा। अथ ऋषभ भगवान अर्हन्माकाशुपदिष्टत्वयथोमे जैन धर्म्म नित्य है तथा स्मृतौच अर्थात् स्मृतिमें कहा है। भगवान अर्हन्देवगतगुणकर्म्मलक्षण अर्थसमूह नित्य है अर्थात् त्रैकालिक है और आनन्दरूपत्व दिखाता है अर्हन्त विज्ञान करके आनन्दरूप अनन्त धीरगण देखते है। ए प्रत्यक्ष और अनुभवसे जाना जाता है।

इति भाषासारजैनसिद्धान्तरत्ने मुग्धबोधात्मक चतुर्थ पाद ॥

समायात ईदृक्रूपधरो मम। सभाया वद मामत्र तथा कस्मात्त्वमागत । को वेष किन्तु ते नाम को धर्म्मो वाम्मी कि तव। को वेदस्ते क आचार कि तप का प्रभावना। कि ज्ञान-का प्रभावस्ते कि सत्य धर्मलक्षण। तत् त्व सर्व्वं समाचक्ष्व ममाये सत्यमेव च । श्रुत्वा वेनस्य तद्वाक्य पुण्यवाक्यमुदाहरत्। सत्यसत्त्व उवाच। करोषीव तथा राज्य महाभृढो न सशय । अह धर्मस्य सर्व्वस्वमह पूज्यतम सुरै । अह ज्ञानमह सत्यमह धाता सनातन । अह धर्म्म अह मोच सर्व्वदेवमयोऽप्यहम्। ब्रह्मदेहात्समुद्भूत सत्यधर्मोऽस्मि नान्यथा। जिनरूप विजानीहि सत्यधर्मकलेवर। ममरूप हि ध्यायन्ति योगिनो ज्ञानतत्परा ॥ वेन उवाच। तवैव कीदृश कर्म्म कि ते दर्शनमेवच। किमाचारो वदस्व हि हृद्युतत्त्वे न भ्रमुजा ॥ सत्यसत्त्व उवाच। अर्हन्तो देवता यत्र निर्ग्रन्थोगुरुरुच्यते। दया वै परमोधर्म्मस्तत्र मोक्ष प्रदृश्यते। ईदृशोऽस्मि न सन्देह आचार प्रयदाम्यह । यजन याजन नापि वेदाध्ययनमेव च। नास्ति सन्ध्या तपो दान स्वधास्वाहाविवर्जित। हव्य कव्यादिक नास्ति नास्ति यज्ञादिका क्रिया। पितॄणा तर्पण नास्ति नातिथिर्वैश्वदेविक । कृष्णस्य न तथा

पूजाद्यर्हन्तध्यानमुत्तम । एव धर्मसमाचारो जैनमार्गे प्रदृश्यते । एतत्ते सर्व्वमाख्यात जैनधर्मस्य लक्षणम् ॥ वेन उवाच । वेदे प्रोक्तो यथा धर्म्मो यत्र यज्ञादिका. क्रिया' । पितृणा तर्पणं श्राद्ध' वैश्वदेव न दृश्यते । न दानं न तपोवास्ति किं वै धर्म्मस्य लक्षणं । वद सत्य ममाग्रे त्व दयाधर्म्मस्य कीदृश. ॥ सत्यसत्त्व उवाच । पञ्चतत्त्वप्रबद्धोऽय प्राणिना काय एव च । आत्मा वायुस्वरूपोऽय तेषा नास्ति प्रसङ्गता । यथा जलेषु भूतानामपि सङ्गमवेहि तत् । जायते बुद्बुदाकार तद्वत् भूतसमागम' । पृथ्वीभावो रज स्वस्तु चापस्तत्रैव संस्थिता' । ज्योतिश्चात्र प्रदृश्येत वायुरावर्त्तते च त्रीन् । आकाशमात्रयोगात् पश्चाद्बुद्बुदत्व प्रजायते । अप्सु मध्ये प्रभात्येव सुतेजो वर्त्तुल पर । क्षणमात्र प्रदृश्येत तत्क्षणा नैव दृश्यते । तद्वद्भूतसमायोग. सर्व्वत्र परिदृश्यते । अन्तकाले प्रयात्यात्मा पञ्च पञ्चसु यान्ति ते । मोहमुग्धास्ततोमर्त्या वर्त्तन्ते च परस्पर । श्राद्ध' कुर्वन्ति मोहेन क्षयाहे पितृतर्पणं । क्वास्ते मृत. समश्नाति कीदृशोऽसौ नरोत्तम । किं स्थान कीदृश कार्य्यं केन दृष्ट वदस्व न । कस्य श्राद्ध प्रदीयेत सा तु श्रद्धा निरर्थिका । अन्यदेव प्रवक्ष्यामि वेदाना कर्म दारुणा । यदातिथिर्गृह

याति भोजन लभते ध्रुव। तदा चाहत्य राजेन्द्र अतिथि परिभोजयेत्। अश्वमेधे मखे स्वर्ग गोमेधे द्वयमेवच। नरमेधे नर राजन् वाजमेधे तथाध्वर्ज। राजसूये महाराज प्राणिना घातन वहु। पुण्डरीकं गजं हन्यात् गजमेधे तु कुञ्जर। सौत्रामण्या पशु मेधे मेष-मेव प्रदृश्यते। नानारूपेषु सर्वेषु श्रूयता नृपनन्दन। नानाजातिविशेषाणा पशूना घातन स्मृत। कस्मा-द्धि दीयते दान कि नु दानस्य लक्षण। न दत्तसुत्-काठ क्षेय क्रियते यदि भोजन। अत्यन्तदोषहीनास्तान् हिसन्ति याज्ञ्यहामखे। तत्र कि दृश्यते धर्म कि फल तव भूपते। पशूना मारण यत्र निर्दिष्ट वेदपण्डि-तै। तस्माद्धिनष्टधर्मश्च न पुण्य मोक्षदायक। दयां विना हि यो धर्म स धर्मो विफलायते। जीवाना पालन यत्र तत्र धर्मो न संशय.। स्वाहाकार स्वधा कारस्तप सत्यो नृपोत्तम। दयाहीन निष्फल स्यात् नास्ति धर्मस्तु तत्र हि। एते वेदा अवेदा सुरदया यत्र न विद्यते। दयादानपरोनित्य जीवमेव प्ररक्षयेत्। चाण्डालो वा स शूद्रो वा स वै ब्राह्मण उच्यते। ब्राह्मणो निर्दयो यो वै पशुघातपरायण.। स वै सुनिर्दय पापी कठिन क्रूरचेतन। यचने कथ्यते वेद स वेद

ज्ञानवर्जित.। यत्र ज्ञान भवेन्नित्य तत्र|वेदः प्रतिष्ठितः। दयाहीनेषु वेदेषु विप्रेषुच महामते। नास्ति सत्य क्रिया तत्र वेदविप्रेषु वै कदा। वेदा अवेदा राजेन्द्र ब्राह्मणा सत्यवर्जिता। दानस्यापि|फल|नास्ति तस्मात् दान न दीयते। यथा ब्राह्मस्य वै चिह्न' तथा दानस्य लक्षण। जिनस्यापिच यद्धर्म भुक्तिमुक्तिप्रदायक। तमाम ऽह प्रवक्ष्यामि बहुपुण्यप्रदायकम्। आदौ दया प्रकर्त्तव्या शान्तभूतेन चेतसा। आराधयेत् सदा देव जिनमेक चराचर। मनसा शुद्धभावेन जिनमेक प्रपूजयेत्। नमस्कार प्रकर्त्तव्यस्तस्य देवस्य नान्यथा। अन्यत्र। क्षतयुगेऽपि दानवा ऊचुः। दद दीक्षा महाभाग सर्व्वसंसारमोचनीं। तथेत्याहोशना दैत्यान् गच्छामोनर्मदामनु। भो भोस्त्वजत यास्यसि दीक्षा कारयितास्मि व। एव ते दानवा भीष्म भृगुरूपेण धीमता। आङ्गिरसेन ते तत्र कृता दिग्वाससोसुरा। वर्हिपिच्छध्वजं तेषा गुञ्जिकाचारुमालिका। दत्वा चकार तेषान्तु शिरसोलुञ्चनं पुन। केशानामुत्पाटनञ्च परम धर्मसाधनम्। धनानामीश्वरोदेवो धनद. केशलुञ्चनात्। सिद्धि परमिका प्राप्त सदाचेपस्य धारणात्। मुनित्व' लभ्यते ह्येव पुरा प्राज्ञा-

र्हत. स्वयं। बालोत्पाटेन देवत्व मनुष्यैर्लभ्यते खिड। कि न कुर्व्वन्ति तस्मान महापुण्यप्रद यत'। मनो रथोहि देवाना लोके वै मानुषे कदा। अस्मिन् वै- भारते वर्षे जन्म यै श्रावके कुले। तपसा युक्तमात्मानं केशोत्पाटनपूर्व्वकम्। तीर्थङ्करार्श्चतुर्व्विशन्तथा तेषु पुरस्कृतं। छायाकृत फणीन्द्रेन ध्यानमात्रप्रदेशिका। अथ ऋषभ अजित सम्भव अभिनन्दनसुमतिपद्मप्रभु- सुपार्श्व-चन्द्रप्रभु सुविधि-शीतलनाथश्रेयस-वासुपूज्य- विमल-अनन्त धर्मशान्ति कुंथु-अरनाथमल्लिमुनि-सव्रत नमि नेमिनाथ-पार्श्वनाथ महावीर २४ एते वर्त्तमान जिना। स्तुयन्त मन्त्रपाठेन सर्गोहस्तगतोहि स। मोक्षो वा भविता नून विचारणो न कथ्यते। कदा वा ऋषयोभूत्वा सूर्य्याग्निसाधने तप। जम्पा विरागिनश्चैव मनुमञ्चाङ्गकं तथा। तथा तपस्यता मृत्युगताना कालपर्य्ययात्। पाषाणेन शिरोभग्न भवते पुण्यकार्म्मणा। दधिमिष्टान्नभक्तेषु पश्चाद्वै रोपण कृत। अरण्ये निर्जने न्यास कदा वै भविता हि न। कर्णाजाप्य श्रावकाश्च करिष्यन्ति समाहिता। भो भो ऋषे,न गन्तव्य यथाह्वयन्ति ते सुरा। विघ्नकर्त्तु हि ते मत्वा त्याज्या सर्वे दिवौकस। चणविन्च मिनो रौद्रा

मायावन्तो दुरासदा.। यदि त्वामाह्वयेद् ब्रह्मा विष्णुर्वापि महेश्वर.। वरुणो पावको वापि न गन्तव्य तथा त्वया। स्वर्गस्थाद्ध बहि.स्थानमर्हताना प्रतिष्ठित। तत्र• त्वया च गन्तव्य मोक्षभागी यतोभवान्। लघूनीमानि स्थानानि भूयोवृत्तिकराणि च। त्याज्यानि तेन चैतानि सत्यमेव वचो हि न.। अस्मदीयेन तमसा नियमैर्विविधैस्तथा। व्रज त्व चोत्तम स्थान मोक्षमार्गस्थ ये बुधा। विन्दन्ति भक्तिभावेन तपोयुक्तास्तपस्विन। अक्षेषु नियहो यत्र दया भूतेषु सर्व्वदा। तत्तपो धर्म्म प्रत्युक्त सर्वा चान्या विडम्बना। ज्ञात्वै तद्भवता साधो गन्तव्य परम पदम्। या वै तीर्थकरा याता या गति योगिनो गता। एव वै देवता पूर्व विद्याधर-महोरगा ॥

इति भाषासारजैनसिद्धान्तरत्ने प्रथमखण्डे मुग्धबोधनामा चतुर्थ. पाद ॥

---

नमोऽर्हते ।

## द्वितीय खण्ड ।

### प्रथम पाद ।

प्रणमामि चन्द्रसूरीं य साख्याद्युक्तिकण्टकान् ।
छित्वा युक्त्यसिना विश्व चर्हत् क्रीडास्थल व्यधात्॥

स्वपक्षे परैरुद्भाविता दोषा निरस्ता प्रथमे पादे सद्वाद । द्वितीये सौगतचतुष्टयगिप्यादिवादाना युक्त्याभासमयता प्रदर्शिता । तृतीये तु जिनसूत्र । चतुर्थे मुग्धबोध समाप्तश्चाय खण्ड ।

---

जिनों ने साख्यादिको की उक्तिरूप कण्टकोंको युक्तिरूप खड्ग करके छेदन पूर्व्वक समस्त ससारको श्रीमान अर्हद्देवका क्रीडास्थल किया है ऐसे चन्द्रसूरि प्रभृति आप्तव्यक्तिको प्रणाम करता हु ॥

अपनी पक्षमें पर उद्भावित दोष समस्त प्रथम पादके विषे निरास किए है। उर दुसरे पादके विषे बौद्धके चारो शिष्यो को वादादिको की युक्त्याभासमयत्व प्रदर्शित किया हैं। तृतीय पादके विषे आप्तवाक्यरूप जो जिनसूत्र सो निरूपण किया है। उर चतुर्थ पादके विषे मुग्धबोध अर्थात् अज्ञजनोको इत्यादि शास्त्र द्वारा जैन धर्म्म अनादि है ऐसा बोधन किया है। इति पादचतुष्टयमय प्रथम खण्ड ।

द्वितीयखण्डारम्भे साङ्ख्यवेदान्तादिदोषं दृष्ट्वा अतोऽर्हं तदितरत् सर्व्वं विहाय सर्व्वात्मभावेन तेनाराध्य इत्यर्थे अयं खण्डारम्भः ।

जैनसिद्धान्तरत्नवाक्यादि व्याचक्षाणैः सम्यग्दर्शनादिप्रतिपक्षभूतानि निराकरणीयानीति तदर्थं पर खण्डः ।

तैत्तिरीयोपनिषत्सु एकादशानुवाके द्वितीया स्मृति—यान्यस्माकं सुचरितानि, तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि । अस्यार्थ—यान्यस्माकमाचार्य्याणां सुचरितानि शोभनचरितानि जैनधर्म्माम्नायाद्यविरु-

---

इस द्वितीय खण्डारम्भके विषे साङ्ख्यवेदान्तन्यायादि दर्शन शास्त्रो का दोष दर्शन करके इससे तो अर्हं इंगित धर्म है उससे व्यतिरिक्त सर्व्व कोत्याग करके सर्व्व प्रकार करके भक्तजनो को कहा अर्हं न आराध्य है इस अथ के विषे द्वितीय खण्डका आरम्भ करते हैं ।

जैन सिद्धान्तरत्न वाक्यका व्याख्या करनेमे तत्प्रतिपादनार्थं सम्यग्ज्ञान् सम्यगदर्शन सम्यक्चारित्रका वैरिस्वरूप साङ्ख्यादि दर्शन शास्त्रका मत खण्डन करना आवशयक है । एव ऐ करनेमे इहा द्वितीय खण्डका आरम्भ हु येदमे उक्त है) । जैनधर्म्म शास्त्रका अविरोधि हमरे लोक का आचार्य्यगणोका सुचरित सकल

ष्ठानि तान्येव त्वयोपास्यानि अदृष्टार्थान्यनुष्ठेयानि नियमेन कर्त्तव्यानीत्येतत्। नो द्रुतगाथि विपरीताचार्य्यकृतान्यपि।

कात्यायनधर्म्मशास्त्रे तृतीयखण्डे द्वितीया स्मृति—स्वशाखाश्रयमुत्सृज्य परशाखाश्रयश्च यः।
कर्त्तुमिच्छति दुर्म्मेधा मोघं तत् तस्य चेष्टितम्॥

जैनसिद्धान्तरत्नार्थनिर्णयस्य च सम्यग् ज्ञानचारित्र दर्शनार्थत्वात् तन्निर्णयेन स्वपक्षस्थापनं प्रथमं कृतं तदभ्यर्हितं परपक्षप्रत्याख्यानादिति। ननु मुमुक्षूणां मोक्षसाधनत्वेन सम्यग्दर्शनादि निरूपणाय

---

पालन करना उचित है। अन्यमतिका कहा भया विधि सबका पालन करना प्रयोजन नहि है। फेर कात्यायन धर्म्म शास्त्रका तृतीय खण्डमें द्वितीय स्मृतिमेंभि कहा हैं।—यो मूढ निज शाखा कथित् कर्म्मो को परित्याग करके परशाखोक्त कर्म्म करने प्रवृत होते है उन्का सो कर्म्म फलजनक नहि होता है। जैनसिद्धान्तरत्नका अर्थ निरूपण तत्वज्ञान, सो हैं इसमें पहिले जिनसूत्रमें जैनसिद्धान्तरत्नका अर्थ निरूपण पूर्व्वक व्यवस्थापित हुया है। परपक्ष खण्डन सेति उन्का पोषकता होने शक्त है। एइ परपक्ष खण्डनात्मक द्वितीयखण्ड आरम्भ करा याता है। यो कहो, मुक्तिका कारण होनेसे तत्वज्ञान निरूपण सो तत्वज्ञान निरूपणके बीचमें स्वपक्ष स्थापन, ए दो

ापनमेव केवलं कर्त्तुं युक्तं किं परपक्षनिरा-
परविद्वेषकारणेन। बाढमेव तथापि महा-
गृहीतानि महान्ति साख्यादितन्त्राणि
र्शनापदेशेन प्रवृत्तानुपलम्भो भवेत् केषा-
दमतीनामेतान्यपि सम्यग्दर्शनायोपादेयानी-
:। तथा युक्तिगाढत्वसम्भवेन सर्व्वज्ञभाषित-
श्रद्धा च तेष्विल्यतस्तदसारतोपपादनाय
ते॥ १॥
नसिद्धान्तत्त्वविरुद्धस्मृतिप्रवर्त्तकः कपिलोऽथनि-

---

ारना उचित है। ओम्मे परविद्वेषात्मकपरमत खण्डन
र क्या प्रयोजन? इसलोक बोल्ते हैं के प्रयोजन हैं।
मतका असारता देखा नहि प्रयोजन है। साख्यादि
ाभि महत् है। देखने में आपात ज्ञानसें बोध होय,
न शास्त्र वहा बड़ा महर्षि कर्त्तृक रचित है औ तत्त्वज्ञान
नाथ प्रवृत्त। अज्ञानी लोक हठात मनमे कर्
: तत्त्वज्ञान मिलाने औयास्ते साख्यादि तन्त्र लेना चाहिये।
कारणे सर्व्वज्ञ कथित ऋषिका कथित औ युक्तिपूर्ण बोल्के
ादि शास्त्रमें लोकों का अचल श्रद्धा हो गया। इसवास्ते
लोकोंके हिताय औ सकल शास्त्रका असारता देखाना
ापर्णे यत्न करना उचित है॥ १॥ जैनसिद्धान्तरत्न विरुद्ध
स्मृतिका चलाने औयाना कपिल और महर्षी नामिरायका

वशजो जीवविशेष एव मायया विमोहितो न तु मरुदेवाप्रसू नाभेर्जातो ऋषभदेव'। कपिलो ऋषभ देवाख्य सांख्यतत्त्व जगाद ह। ब्रह्मादिभ्यश्च देवेभ्यो भृग्वादिभ्यस्तथैव च॥ तथैवासुरये सर्व्वं वेदार्थैरुप-ष्ट हितम्। सर्व्ववेदविरुद्धञ्च कपिलोऽन्यो जगाद ह॥ साख्यमासुरयेऽन्यस्मै कुतर्कपरिवृ हितमिति स्मरणात्। तस्मात् भाषासारजैनसिद्धान्तरत्नविरुद्धतया नाप्राया साखास्मृतेर्वार्थंता न दोष। साखास्मृत्युक्ता-नामर्थाना भाषासारजैनसिद्धान्तेऽनुपलम्भाभस्या

---

पुत्र भगवान कपिल एक नहि हैं। पहिला कपिल अग्निवशज मायामोहित था, दोसरा कपिल प्रजापति नाभिरायका पुत्र प्रथमा वतार भगवान श्रीऋषभदेव होते भये। सर्व्वज्ञ भगवान ऋषभदेव, प्रजापति नाभिरायसे कपिलरूपमे अवतीर्ण हो कर सांख्यशास्त्र प्रचार करते भये, वहु ये साख्यतत्त्व ब्रह्मादि देवगण को भृगु प्रभृति ऋषिगणको आसुरि नामक ब्राह्मण को उपदेश दिया था, तदुक्त सांख्यस्मृति वेदार्थ द्वारा उपवृहित। एव औरभि एक कपिल ने आसुरि ब्राह्मणको कुतर्क परिवृहित स्वकपोलकल्पित अपर साख्यका उपदेश किया था, इसवास्ते, वेदविरुद्ध ऋषभ देवका साख्यस्मृतिका व्यर्थ बोलके निर्देश करनेसे कोइ दोष नहि। साख्यस्मृतिमें ऐसा कितना एक विषय उक्त हैं। उस्का श्रीभगवान ऋषभदेवोक्त भाषासार जैनसिद्धान्तरत्नमे मिलता

नात्मत्वम् । ते च विभवश्चिन्मात्रा पुरुषास्तेषां बन्ध-
मोक्षौ प्रकृतिरेव करोति । तौ पुनः प्रकृतावेव
सर्व्वेश्वरः पुरुषविशेषो नास्ति । कालस्तत्त्वं न
भवति । प्राणादयः पञ्चकरणवृत्तिरूपा भवन्तीत्येव-
मादयस्तस्यामेव द्रष्टव्याः ॥ २ ॥

तत्र सांख्या मन्यन्ते यथा घटशरावादयोभेदा-
मृदात्मतयाऽन्वीयमानामृदात्मकसामान्यपूर्व्विकालोके

---

नहि, इसि कारणसे उक्त सांख्य स्मृतिका प्रमाण बोलना चाहिये,
ओसका मत य है पुरुष अर्थात् जीवात्मा सब चिन्मात्र वा विभु,
प्रकृति हि उनो का बन्ध वा मोक्ष करना जोयानि है। बन्ध
और मोक्ष ए दोनो प्रकृतिके अधीन है। प्राणादि पाचो इन्द्रिय
का वृत्ति है इसिमाफिक औरभि काइ एक विषय ये सांख्य
स्मृतिमे देखनेमे आता है॥ २॥ उसमे सांख्यका मत इय इय कि
यथा घटओगैरे मट्टिका पदार्थ मे मट्टिका स्वरूपका अन्वय रहनेके
सबमे मट्टिइ उय जिसि सबो का कारण है। उसिमाफिक यो
कुछ वाहिक और आन्तरिक भाव (पदार्थ) उयसब सुख दुःख औ
मोहरूप पहुँ लिस रहनेसे सबमे सुख दुःख और मोहात्मक
कोइ एक सामान्य (जाति) और सबका कारण स्वरूप है।
योह सुख दुःख मोहात्मक सामान्य पदार्थइ त्रिगुणान्वित आरओ
मस्तिका ओगैरेके तरहसे अचेतन पदार्थ है। लिकिन चेतन
और चेतनपुरुषका (आत्माका) प्रयोजनके लिये और स्वनिह

दृष्टा सर्व्वएव बाह्याध्यात्मिका भेदा सुखदुःख-
मोहात्मतयाऽन्वीयमाना सुखदुःखमोहात्मकसामान्य-
पूर्व्विका भवितुमर्हन्ति । यत्तत् सुखदुःखमोहात्मकं
सामान्यं तत्त्रिगुणं प्रधानमव्यक्तमचेतनं चेतनस्य
पुरुषस्यार्थं साधयितुं प्रवृत्तं स्वभावभेदेनैव विचित्रेण
विकारात्मना प्रवर्त्तत इति । तथा परिमाणादिभि
रपि, लिङ्गैस्तदेव प्रधानमनुमिमते तत्र वदामः, यदि
दृष्टान्तबलेनैव तन्निरूप्यते नाचेतनं लोके चेतना-

---

विचित्रास्वभावके प्रभावसे नानाप्रकार आकार विकारमें परिनमित
होता है । परिमाणप्रभृति बोधक हेतुसेभि उसिका (प्रकृतिका)
अनुमान होसे सका है । इस मतके उपर हमलोक बोलते हैं
कि सांख्य खालि दृष्टान्तमत अवलम्बन करके जगतका कारण
निरूपण करनेके वास्ते प्रवृत्त हुये हैं सत्य परन्तु उन चेतन
कर्त्तृक अनधिष्ठित कोइ अचेतनको विशिष्टपुरुषार्थ निर्व्वाहरूप
विकार ( वस्तुभेद ) रचना करते भये देखा नहि है कारण
अचेतनके कारणस्वरूप दृष्टान्त है नहि । घर, राजप्रासादादि
बिछौना, आसन क्रीडाभूमि वगेरे यो सुख दुःख और दुःख
प्राप्तिके परिहार, योग्य वस्तुभेद हय, उय सबइ बुद्धिमान कारि
गरीके साहाय्यसे बनते देखा याता है लेकिन खालि पत्थर
वगेरे अचेतन चिजोके साहाय्य से और सब चिजो का रचना
होते नहि देखा याता है । इ टा पत्थर वगेरे अचेतन पदार्थो

नधिष्ठितं स्वतन्त्र किञ्चिद्विशिष्टपुरुषार्थनिर्व्वर्त्तन-समर्थान् विकारान् विरचयत् दृष्टम् । गेहप्रासाद-शयनासनविहारभूम्यादयोऽपि लोके प्रज्ञावद्भिः शिल्पि-भिर्यथाकाल सुखदुःखप्राप्तिपरिहारयोग्या रचिता, दृश्यन्ते, तथेद जगदखिल पृथिव्यादिनानाकर्म्म-फलोपभोगयोग्य बाह्यमाध्यात्मिकञ्च शरीरादिनाना-जात्यन्वित प्रतिनियतावयवविन्यासमनेककर्म्मफला-नुभवाधिष्ठान दृश्यमान प्रज्ञावद्भि' सम्भावितत्तमै शिल्पिभिर्म्मनसाप्यालोचयितुमशक्य सत् कथमचेतन प्रधान रचयेत् लोष्ट्रपाषाणादिष्वदृष्टत्वात् ॥ ३ ॥

मृदादिष्वपि कुम्भकारादाधिष्ठितेषु विशिष्टा-

---

यव चेतनवस्तुके प्रेरणा छाडा घोडागाडि कुछ स्वाधीनभावसे रचना करनेमे समर्थ नहि है, तब अचेतन प्रधान किसतयोरसे इय पृथिवी प्रभृति लोकादिका ओर उसिके बिच्मे कर्म्मफल भोगयोग्य नानास्थान—बाह्य औ आध्यात्मिक शरीर समूह—मनुष्यादि जातिको असाधारणभावमे विन्यस्त वा रचनाचातुरी सहित वर्त्तमान हरेकरकमके कर्म्मफल भोग करनेकि योग्य-स्थान बुद्धिमान कारिगरोंकेभि बुद्धिके अगोचर कल्पनाके वाहार ऐसा अद्भुत जगत् कयेसे रचना करयले ? ॥ ३ ॥

इसके बारेमे इतनाहि देखनेसे आता है कि मट्टि वगेरेके चिजों कुम्भार प्रभृतिके माहाय्यसे अधिष्ठित होके विविधप्रकारमे

कारा रचना दृश्यते, तद्वत् प्रधानस्यापि चेतनान्तराधिष्ठितत्वप्रसङ्ग । न च मृदाद्युपादानस्वरूपव्यापाश्रयेणैव धर्मेण मूलकारणमवधारणीय न वाह्यकुम्भकारादिव्यपाश्रयेणेति किञ्चित् नियामकमस्ति । न चैव सति किञ्चिद्विरुध्यते प्रत्युत श्रुतिरनुगृह्णाति चेतनकारणत्वसमर्पणात् । अतोरचनानुपपत्तेश्च हेतोर्नाचेतन जगत्कारणमनुमातव्य ॥ ४ ॥

---

धन रहा है। इय दुटा उसे प्रधानकाभि कोइ एक चेतन अधिष्ठाता जरुर है ऐसाहि अनुमान होने सके। ऐसा कोइ नियामक नहि हय कि उसको मूलकारणसे मृत्तिकादि उपादान स्वरुपका अतिरिक्त धर्म रहना स्वीकार किया या सक्ता है औरभि कुम्भार प्रभृतिकी तरे सामानता अधिष्ठाताको परिहार किया या सक्ता है अथात् (मूल प्रकृतिमे अचेतनत्वधर्म विद्यमान है उसमे कोइतरेका सामिध धर्म है नहि, मट्टि कुम्भारमे प्रयुक्त होकर घटादि नानाप्रकार आकारमे परिणत होता है, लिकिन मूल प्रकृति यो इस नियमको अधीन है ऐसावात वोलनेमे कोइभि भमय नहि है) लिकिन अचेतन मावइ चेतनाधिष्ठित ऐसा होनेसे सामानता दोषभि नहि होता है इसिवास्ते चेतनका कारण समपण कारणे सवसे वेदका अनुकूल होया, अतएव अचेतन कारणपक्षमे विचित्रजगतकि रचना उपपन्न नहि होनेके सवसे अचेतन प्रधानइ जगतका कारण इय अनुमानसेभि याने नहि सक्ता है ॥ ४ ॥

न केवल साङ्ख्यसिद्धान्ते चेतन्य कैवल्यावस्थाया-मेवविधश्चिद्रूप यावद्दर्शनान्तरेऽपि विरूपामागा-एवरूपोऽवतिष्ठते। तथाहि संसारदशायामात्मा कर्तृत्वभोक्तृत्वानुसन्धातृत्वमय' प्रतीयतेऽन्यथा यद्ययमेक चेतन्यस्तथाविधो न स्यात् तदा ज्ञानक्षणानामेव पूर्व्वापरानुसन्धातृशून्यानामात्म-भावे नियत' कर्म्मफलसम्बन्धो न स्यात् कृत-हानाऽकृताभ्यागमप्रसङ्गश्च। यदि येनैव शास्त्रोपदिष्ट-मनुष्ठित कर्म्म तस्यैव भोक्तृत्व भवेत्तदा हिताहित-

---

आत्मानो है सो कवल्य अवस्थामे केवल आत्मतत्त्व दर्शन करके परितृप्त रहता है ऐसा नहीं अनाऽभीसपूर्ण विषयभी दर्शन करता है। यब वह आत्मा संसारी था तब वह आत्मा हम कर्त्ता हम भोक्ता उर हम अनुसन्धाता इत्यादि रूपमे प्रीतिलाभ करता आत्माका कर्तृत्व भोक्तृत्व स्वीकार नही करनेसे तिस्के कर्म्मफलका सम्बन्ध कहा नही यासक्ता। आत्माका कर्म्मसम्बन्ध स्वीकार नहीं करनेसे कृतकर्म्मका फल लाभ नही हो सक्ता। ऐसे अकृतकर्म्मके फलका आगम होने सक्ता है। यो शास्त्रोपदिष्ट कर्म्मका अनुष्ठान करताहै वही उन कर्म्मों शुभाशुभो का फल प्राप्त होता है अथवा भोग-करता है एह कारण हित उर अहित कर्म्मको प्राप्ति परिहारके वास्ते

प्राप्तिपरित्यागाय सर्व्वस्य प्रवृत्तिर्घटेत सर्व्वस्यैव व्यवहारस्य हानोपादानलक्षणस्यानुसन्धानेनैव प्राप्तत्वात् ज्ञानक्षणाना परस्परभेदेनानुसन्धानशून्यत्वात् तदनुसन्धानाभावे कस्यचिदपि व्यवहारानुपपत्ते। कर्त्ता भोक्तानुसन्धाता य स आत्मेति व्यवस्थाप्यते। मोक्षदशायां तु सकलग्राह्यग्राहकलक्षणव्यवहाराभावा च्चैतन्यमात्रमेव तस्य अवशिष्यते तत् चैतन्य चितिमात्रत्वेनैवोपपद्यते न पुनरात्मसंवेदनेन यस्मात् विषयग्रहणसमर्थनमेव चितेरूप नात्मग्राहकत्वम्॥ ५॥

---

सबका प्रवृत्ति होता है जिस हेतुसेती सर्व्वप्रकार व्यवहारके कालेमे अनुसन्धानसेती ही ज कोन वस्तु हेयहे वा कोन वस्तु ग्राह्य है उसका निश्चय किया जाता है। अनुसन्धानके बिगर किसीकाभी व्यवहार सिद्ध होता नहीं। अनुसन्धानसेती हीज जाता जाता है यो कर्त्ता यो भक्ता वा यो अनुसन्धाता वही आत्मा। किन्तु मुक्त होनेसे ग्राह्य ग्राहक व्यवहार रहता नही अर्थात् कोन वस्तु ग्राह्य है औसे कोन ग्रहण करता है इनो का इतरविशेष रहता नहीं। केवल चैतन्यमात्र अवशिष्ट रहता है। एही चेतन्य चिच्छक्तिको ग्रहण करने सके आत्मसम्वेदनके विषे उसका सामर्थ्य नहीं है। जिसहेतुसेती विषय ग्रहण का करा अपणापणा वहा चिच्छक्ति है। उसको आत्म ग्राहकता नही है॥ ५॥

तथाहि अर्थस्थित्या गृह्यमाणोऽयमिति गृह्यते स्वरूप गृह्यमाणमहमिति न पुनर्युगपद्वहिर्मुखता-न्तर्मुखतालक्षणव्यापारद्वय परस्परविरुद्ध कर्त्तुं शक्यम्। अत एकस्मिन् समये व्यापारद्वयस्य कर्त्तुमशक्यत्वात् चिद्रूपतयैवावशिष्यते अतो मोक्षावस्थाया निवृत्ताधि-

---

ए विषय यो कहा है यो चिच्छक्ति है सो अर्थमात्रको ग्रहण करणे सकें वही चिच्छक्तिका स्वरूप है। एक समयमें वहिर्मुखता उर अन्तर्मुखता ए व्यापारद्वय सम्भव होने सक्ता नही। जिस समयमें बाह्यवस्तुको ग्रहण करें उस समय आन्तरिक ज्ञान होने सक्ता नही जिस हेतुसेती वह दोनु कार्य्य परस्पर विरुद्ध है। इस हेतुसेती एक कालमे आन्तरिक उर बाह्यज्ञान होने सक्ता नहीं, सुतरां वही चिन्मय पुरुष सत्व रज उर तम एही गुणत्रयरूप प्रकृतिके योगमें ससारी होयके विविध कर्म्म करके जनमसेती ससारमें आवद्ध होके रहता है। फेर नाना योनियोमे भ्रमण करते करते समस्त दुःखो को अनुभव करता है। ए समस्त दुःख भोग असह्य होनेमेही आत्माको मुक्ति लाभके इच्छाकी उत्पत्ति होता है। तिससेती होज आत्मा योगसाधनमें प्रवृत्त होता है। योगसाधन करके समाधि उपस्थित होनेसेही रज उर तमोगुण लय पायके सत्वगुण मात्र अवशिष्ट रहता है। फेर चिच्छक्तिमे वही सत्वगुणका लय होके वही चिच्छक्ति आत्मामे

कार्य्येषु गुणेषु चिन्मात्ररूप एवात्माऽवतिष्ठत इत्येवं युक्तम् । संसारदशायान्त्वेव भूतस्यैव कर्त्तृत्व भोक्तृत्व-मनुसन्धातृत्वञ्च सर्व्वमुपपद्यते । तथाहि योऽय प्रकृत्या सहानादिर्नैसर्गिकोऽस्य भोग्यभोक्तृत्वलक्षणसम्बन्धो ऽविवेकख्यातिमूलस्तस्मिन् सति पुरुषार्थकर्त्तव्यता-रूपशक्तिद्वयसद्भावे या महदादिभावेन परिणतिस्तस्या संयोगे सति यदात्मनोऽधिष्ठातृत्व चिच्छायासमर्पण-सामर्थ्यं बुद्धिसत्त्वस्य च सङ्क्रान्तचिच्छायाग्रहण-सामर्थ्यं चिदवष्टब्धायाश्च बुद्धेर्योऽय कर्त्तृत्वभोक्तृत्वा-

---

लयको प्राप्त होता है। स्वरूपसे केवल चिन्मय पुरुष मात्र अवशिष्ट रहता है तबही कैवल्य अर्थात् मुक्ति होती है। जब आत्मा यह प्रकृतिके वश होकरके संसारमें प्रविष्ट होता है। तब उसको हमही कर्त्ता हमही भोक्ता और हमही अनुसन्धाता ऐसा ज्ञान रहता है। जिस हेतुसे ती आत्माका संसारमे प्रवेश होनेमे ही वही आत्मा प्रकृतिके सहयोगमें भोग्य वस्तुको को भोग करता है। परन्तु अविवेक यो है वही संसारका मूलकारण है। अविवेक रहनेमें पुरुषका कर्त्तव्य साधनमें शक्ति रहणेसे भी अहङ्कारादि प्रकारमें परिणत होता है। वही परिणतिको प्राप्त होनेसे आत्माका अधिष्ठाता प्रतीयमान होता है। वही आत्माको शक्ति समर्पण करणेका सामर्थ्य है। वही चिच्छक्ति करके अवष्टब्ध बुद्धिका जो कर्तृत्व भोक्तृत्वादि अध्यवसाय उसी

ध्यवसायस्तत एव सर्व्वस्यानुसन्धानपूरकस्य व्यवहारस्य निष्पत्तेः किमनैः फल्गुभिः कल्पनाजल्पैः ? यदि पुनरेव भूतमार्गव्यतिरेकेण पारमार्थिक सात्मन. कर्त्तृत्वाद्यङ्गीक्रियते तदस्य परिणामित्वप्रसङ्ग. । परिणामित्वाच्चानित्यत्वं तस्मादात्मत्वमेव न स्यात् यथाद्यैकस्मिन्नेव समये एकेनैकरूपेण न परस्परविरुद्धावस्थानुभवः सम्भवति यथा यस्यामवस्थायामात्मसमवेते सुखे समुत्पन्ने तस्यानुभवितृत्व न तस्यामेवावस्थायां दु.खानुभवितृत्वम् अतोऽवस्थानानात्वान्-

---

कारके सर्व्वप्रकार व्यवहार सिद्ध होने सक्ता है ए साख्यमतका सिद्धान्त है। इया अनर्थ अना कल्पनाका क्या प्रयोजन है।

यदि एतद्रूप पन्था स्वीकार नहीं करके वास्तविक आत्माका कर्तृत्व भोक्तृत्वादि अहंकार स्वीकार करें तब आत्मा कुं परिणामी स्वीकार करणा होगा। परिणामी वस्तुमात्रही अनित्य है, सुतरां आत्माकु अनित्यत्व प्रतीयमान होता है। इसहेतुसें तो उसको आत्मा कहा जाय नही। जैसे एक समयमें एकरूपमें परस्पर विरुद्ध अवस्थाका अनुभव होता नहीं जिस अवस्थामें आत्माको सुख उत्पन्न होता है उसी अवस्थामें वही सुख अनुभव होता है, कभी उस अवस्थामें दुःखका अनुभव होता नहीं। इसहेतुसें तो अवस्था नानाप्रकारकी उत्पन्न जाइ, सुतरां यही

दभिन्नस्यावस्थावतो नानात्वं नानात्वाच्च परिणामित्वा न्नात्मत्वम् । नापि नित्यत्वमतएव शान्तब्रह्म वादिभिः साङ्ख्यैरात्मनः सदैव संसारदशायां मोक्ष दशायाञ्च एव रूपमङ्गीक्रियते ॥ ६ ॥

इति भाषासारजैनसिद्धान्तरत्ने द्वितीयखण्डे साङ्ख्यनिरासनामा प्रथमः पादः ।

---

अवस्था विशिष्ट वस्तु नानारूप करके प्रतिभात होता है। जो वस्तु नानाप्रकारसे प्रतिपन्न भई उसको अवश्यही परिणामित्व है उस वस्तुका नित्यत्व नहीं। इस हेतुसे ही शान्त ब्रह्ममतवादि जो साङ्ख्य लोग हैं वे संसार दशामें अरु मोक्ष दशामें एही दोनु दशामें ही आत्माका एकरूप स्वीकार करते हैं ॥ ६ ॥

इति भाषासारजैनसिद्धान्तरत्ने द्वितीयखण्डे साङ्ख्यनिरासनामक प्रथम पाद ।

## द्वितीय पाद ।

ये तु वेदान्तवादिनश्चिदानन्दमयत्वमात्मनोमोक्ष मनान्ते तेषां न युक्तं पक्ष । तथाहि आनन्दस्य सुखस्वरूपत्वात् सुखस्य च सदैव संवेद्यमानतयैव प्रतिभासात् संवेद्यमानत्वस्य संवेदनव्यतिरेकेणानुपपन्नमिति संवेद्यसंवेदनयोर्द्वयोरभ्युपगमात् अद्वैतहानि । अथ सुखात्मकत्वमेव तस्योच्यते तद्विरुद्धधर्म्माध्यासादनुपपन्नं न हि संवेदनं संवेद्यस्यैक भवितुमर्हतीति । किञ्चाद्वैतवादिभिः कर्म्मात्मपरमात्मभेदेन आत्मा द्विविधः स्वीकृत इत्यस्य तत्र येनैव रूपेण

---

यो सब वेदान्तवादी हैं वो लोक आत्माको चिदानन्द मयत्वरूप मोक्ष कहते हैं। वेदान्तियोका ए मत सुसङ्गत नहीं है, जिस हेतुसे आनन्द पदार्थ सुखस्वरूप है, वही सुख किसीको ज्ञेय योनके प्रतीत होता है, कारण ज्ञाता विगर ज्ञेयत्व का सम्बन्ध नहीं होता है। एही समयमें आत्माको आनन्दमयरूप मुक्ति कहनेमें ज्ञाता उर ज्ञेय ए दोय पदार्थ स्वीकार करणे पड़ा। सुतरां अद्वैतका हानि हुवा। एह निमित्त वेदान्तियो का मत अयुक्त है। तब सुखात्मकत्वस्वरूप ही मोक्षका स्वरूप है एभी विरुद्धधर्म्मके अध्यासमें अनुपपन्न होता है, कभीभी ज्ञाता उर ज्ञेय ए एकरूप होने सक्ते नहीं।

सुखदुःखभोक्तृत्वं कर्म्मात्मनस्तेनैव रूपेण यदि परमात्मनः स्यात् तथा कर्म्मात्मवत् परमात्मनः परिणामित्वमविद्यास्वभावत्वञ्च स्यात् । अथ न तस्य साक्षात् भोक्तृत्वं किन्तु तदुपढौकितमुदासीन-तयाधिष्ठातृत्वेन स्वीकरोति तदास्मद्दर्शनानुप्रवेश आनन्दरूपता च पूर्व्वमेव निराकृता । किञ्च अविद्यास्वभावत्वे निःस्वभावत्वात् क शास्त्राधिकारी। न तावन्नित्यनिर्म्मुक्तत्वात् परमात्मा नापि अविद्या

---

अद्वैतवादी सब कर्म्मात्मा और परमात्मा ए दो प्रकार आत्मा स्वीकार करते हैं । ए दोनु आत्माको विषे जैसा कर्म्मात्माको सुख दुःख भोक्तृत्व है वैसेही परमात्माको सुख दुःख भोक्तृत्व स्वीकार करणेसे कर्म्मात्मा की फेर परमात्माको भी परिणामित्व और अविद्यास्वभावत्व स्वीकार करणा होगा । फलवेती पर मात्माको साक्षात् भोक्तृत्व नहीं है, किन्तु कर्म्मात्मा अपना भोक्तृत्व परमात्माको उपढौकन स्वरूपसे प्रदान करता है । तिसवेतीभी परमात्मा उदासीन होके सर्व्वाधिष्ठातृत्व स्वीकार करता है, इसमेंती सुखस्वरूपको मोक्ष कहा जाता नहीं इस प्रकारसे आनन्दरूपता बौद्धवादके विष निराकृत भया है । कर्म्मात्मा अविद्या स्वभाव और परमात्मा निःस्वभाव इसहेतुसेती शास्त्रका अधिकारी कौन होगा । परमात्माको नित्यनिर्म्मुक्त स्वभाव है इसहेतुसेती परमात्माको शास्त्राधिकारी कहा जाता

स्वभावत्वात् कर्म्मात्मा। ततश्च सकलशास्त्रवैयर्थ्यप्रसङ्ग । अविद्यामयत्वे च जगतोऽङ्गीक्रियमाणे कस्याविद्येति विचार्य्यते। न तावत् परमात्मनो नित्यमुक्तत्वात् विद्यारूपत्वाच्च कर्म्मात्मनोऽपि परमार्थतो नि:स्वभावतया शशविषाणप्रख्यत्वे कथमविद्यासम्बन्ध ? अथोच्यते एतदेवाविद्याया अविद्यात्व यदविचारणीयत्वम् अविचरणीयत्व नाम यैर्व्वहिर्व्विचारेण दिनकरपृष्ठनीहारवत् विलयमुपयाति

---

नहीं एव कर्म्मात्माका अविद्या स्वभाव इसवास्तें तिस्को भी शास्त्राधिकारिताका सम्भव है नहीं, सुतरां समस्त शास्त्रों का विफलता हुया एव जगत्को अविद्यामय स्वीकार करणेसे भी अविद्या किस्को है एभी विचारणीयत्र है जो तुम बोलोकि अविद्या परमात्माकाही स्वभाव है सोभी कहने नहीं सक्ते हो जिसवास्तें परमात्मा नित्यमुक्तस्वभाव है एर विद्यामय है। तयबही अविद्या कर्म्मात्माका स्वभाव कहें सोभी असम्भव है जिस हेतुसें तो कर्म्मात्मा वास्तविक नि स्वभाव, कभी अविद्या उस्का स्वभाव हो सक्ता नहीं। जैसें शशके शृङ्ग असम्भव है वैसेंही नि स्वभावका अविद्या स्वभाव होने सकें नहीं। अब अविद्या अविद्याका स्वभाव कहने सकें। इसमें कोइ प्रकारका उत्र विचार नहीं। इसमें तो वेदान्त पक्षभी युक्त नहीं। जैसें सूर्य्यकी किरण स्पर्श मात्रमें नीहार कण विलय प्राप्त होते है,

साऽविद्येत्युच्यते । सैव यद्वस्तु किञ्चित् कार्य्यं करोति तदवश्य कुतश्चिद्भिन्नमभिन्न वक्तव्यम् अविद्यायाश्च ससारलक्षणकार्य्यकर्तृत्वमवश्यमङ्गीकर्तव्य तस्मिन् सत्यपि यद्यनिर्व्वाच्यत्वमुच्यते तदा कस्यचिदपि वाच्यत्व न स्यात् ब्रह्मणोऽप्यवाच्यत्वप्रसक्तिस्तस्माद-धिष्ठातृतारूपव्यतिरेकेण नान्यदात्मनोरूपमुपपद्यते अधिष्ठातृत्व च चिद्रूपमेव तद्व्यतिरिक्तस्य धर्मस्य कस्यचित् प्रमाणानुपपत्ते ॥ १ ॥

इति भाषासारजैनसिद्धान्तरत्ने द्वितीयखण्डे साख्यनिरासनामा द्वितीय पाद ॥

---

वैसे ही ज्ञानके उदय होनेसे अविद्या विलय प्राप्त होता है। इत्यादि प्रकारसे वेदान्ती सब वस्तुनसे तर्क वितर्क किए हैं, उनका अनुवाद विशेष प्रयोजनीय नही है ॥ १ ॥

इति भाषासारजैनसिद्धान्तरत्ने द्वितीयखण्डे वेदान्तनिरासनामक द्वितीय पाद ॥

यैरपि नैयायिकादिभिरात्मा चेतनायोगाच्चेतन इत्युच्यते चेतनापि तस्य मनःसयोगजा तथाहि इच्छाज्ञानप्रयत्नादयो ये गुणास्तेषा व्यवहारदशायाम् आत्ममन सयोगादुत्पद्यन्ते तैरेव च गुणै. स्वय ज्ञाता कर्त्ता भोक्तेति व्यपदिश्यते मोक्षदशाया तु मिथ्याज्ञाननिवृत्तौ तन्मूलाना दोषाणामपि निवृत्तिस्तेषा बुद्ध्यादीना विशेषगुणानामत्यन्तोच्छित्ति. स्वरूपमात्र प्रतिष्ठितमात्मनोऽङ्गीकृत तेषामयुक्तः पक्षः। यतस्तस्या दशाया नित्यत्वव्यापकत्वादयोगुणा आकाशा-

---

नैयायिक बोलते हैं यो आत्मा सचेतन नही हैं चेतना संयोगसेती उसको सचेतनत्व है इसमेती आत्माका मनसे सयोग होनेसे इच्छा ज्ञान प्रयत्नादि व्यपदेश होता है। मोक्ष-कालमें यो कर्तृत्वादि आत्माके यो गुण हैं उनो के व्यवहार कालमें आत्ममन सयोग होनेसे आत्माका चैतन्य उत्पन्न होता है एव वेही समस्त गुणद्वयको कर्तृत्व भोक्तृत्व मिथ्या ज्ञानका निवृत्ति होके सोइ मिथ्या ज्ञानका मूलभूत दोषो काभी निवृत्ति होता है। तबवेही समस्त बुद्धि प्रभृतिका विशेष गुणोका निवृत्ति होके केवल आत्माका स्वरूप मात्र विद्यमान रहता है। नैयायिको

दीनामपि सन्ति अतस्तद्वैलक्षण्येनात्मनश्चिद्रूपत्व-मवश्यमङ्गीकार्य्यम्। आत्मत्वलक्षणजातियोग इति चेत् न सर्व्वस्यैव तज्जातियोग सम्भवति अतो जातिभ्यो वैलक्षण्यमात्मनोऽवश्यमङ्गीकर्त्तव्य तस्याधिष्ठातृत्वं चिद्रूपतयैव घटते नान्यथा ॥ १ ॥

इति भाषासारजैनसिद्धान्तरत्ने द्वितीयखण्डे न्यायनिरासनामा तृतीय पाद ॥

---

का एमत युक्तियुक्त नहीं है जिसहे तुसे तो मोक्षदशामे नित्यव्यापक त्वादि गुण आकाशादिको भेभी रहते हैं जिससे तो आत्माका कोइ विशेष गुण अवश्य स्वीकार करणा होगा सोइ विशेष गुणही चिद्रूपत्व ए अवश्य स्वीकार करणा पड़ेगा नहीं तो नित्यत्व व्यापकत्वादि गुण आकाशादिको काभी है उनो को भी आत्मत्व होने सकता है। जो कोनी केवल जातियोगसे केवल आत्माका विशेष गुण कोलके स्वीकार सोभी युक्तपद नहीं करें, जातियोग साधारण पदार्थोंमेभी है तिसे आत्माका विशेष क्या हुवा ? इसहे तुसे आत्माका चिद्रूपत्व जर सव्वाधिष्ठातृत्व स्वीकार करणा होय ॥ १ ॥

इति भाषासारजैनसिद्धान्तरत्ने द्वितीयखण्डे न्यायनिरासनामक तृतीय पाद ॥

येरपि मीमांसकैः कर्म्मकर्त्तृरूप आत्माङ्गीक्रियते तेषामपि न युक्त पक्षः। तथाहि अहं प्रत्ययग्राह्य आत्मेति तेषां प्रतिज्ञा अहम्प्रत्यये च कर्त्तृत्व कर्म्मत्वञ्चात्मन एव न चैतद्विरुद्धत्वादुपपद्यते कर्त्तृत्वं प्रमातृत्व कर्म्मत्वञ्च प्रमेयत्वं न चैतद्विरुद्धधर्म्माध्यासो युगपदेकस्य घटते यद्विरुद्धधर्म्माध्यस्त न तदेकं यथा भावाभावौ विरुद्धे च कर्त्तृत्वकर्म्मत्वे। अथोच्यते न कर्त्तृत्वकर्म्मतुयोर्व्विरोध. किन्तु कर्त्तृकरणत्वयो. केन एतदुक्तं विरुद्धधर्म्माध्यसस्य तुल्यतुात् कर्त्तृकरणतुयो-रेव विरोध न कर्त्तृत्वकर्म्मत्वयोः। तस्मादहम्प्रत्यय-

---

मीमांसक आत्माको कर्म्म कर्त्तृरूप बोलके स्वीकार करते है, सोभी पक्ष युक्त नहीं। जिसहेतुसे तो वो बोलते हैं जो आत्मा है सो अहं प्रत्ययग्राह्य है अर्थात् हम सर्व्वमय ब्रह्म है ऐसा ज्ञानका गोचर। इसमें एक आत्माहीका कर्त्तृत्व और कर्म्मत्व जाना जाता है किन्तु उक्त धर्म्मद्वय परस्पर विरुद्ध है सुतरां एक समयमें एक पदार्थमे रहते नहीं सक्ते। यो व्यक्ति

ग्राह्यत्व परिहृत्यात्मनोऽधिष्ठातृत्वमेवोपपन्नम् । तच्च चेतनत्वमेव ॥ १ ॥

इति भाषासारजैनसिद्धान्तरत्ने द्वितीयखण्डे मीमांसानिरासनामा चतुर्थ पाद ॥

---

पञ्चम पाद ।

केचित् विमर्शात्मकत्वेनात्मनश्चिन्मयत्वमिच्छन्ति ते ह्याहुर्न विमर्शव्यतिरेकेण चिद्रूपत्वमात्मनो निरूपयितु शक्यं जगद्विलक्षणत्वमेव चिद्रूपत्वमुच्यते तच्च विमर्श

---

ज्ञाता जो दोही ज्ञेय भी सो ज्ञान होता नहीं एककालमें,
इसहि तुमे तो आत्माको कर्तृ कर्मरूप कहा जाय नहीं ॥ १ ॥

इति भाषासारजैनसिद्धान्तरत्ने द्वितीयखण्डे
मीमांसानिरासनामक चतुर्थ पाद ॥

---

जो विमर्शात्मकत्व रूपसे आत्माका चिन्मयत्व इच्छा करते हैं वो कहते हैं जो विमर्श विगर आत्माका चिन्मयत्व रूप निरूपण किया जाय नहीं सो ए अयुक्त जिसहि तुमे भी साक्षी है इत्यादि

व्यतिरेकेण निरूप्यमाणं नान्यथावतिष्ठते । तदनुपपन्नम् इदमित्थमेवरूपमिति यो विचारः स विमर्श इत्युच्यते स चास्मिताव्यतिरेकेण नोत्थानमेव लभते तथाहि आत्मन्युपजायमानो विमर्शोऽहमेवभूत इत्यनेन आकारेण संवेद्यते । ततश्चाहंशब्दभिन्नस्य आत्मलक्षणस्य अर्थस्य तत्र स्फुरणान्न तत्र विकल्पस्वरूपतातिक्रमः विकल्पश्चाध्यवसायात्मा बुद्धिधर्मो न चिद्धर्मः कूटस्थनित्यत्वेन चिते सदेकरूपत्वात् नित्यत्वान्नाहङ्कारानुप्रवेशः । तदनेन स विमर्शत्वमात्मनः प्रतिपादयता बुद्धिरेवात्मत्वेन भ्रान्त्या प्रतिपादिता न प्रकाशात्मनः परस्य पुरुषस्य स्वरूपमवगतमिति ॥ १ ॥

इति भाषासारजैनसिद्धान्तरत्ने द्वितीयखण्डे प्रत्यभिज्ञादर्शननिरासनामा पञ्चमः पादः ॥

---

रूप विचारको विमर्श कहते हैं अस्मिता विगर यह विमर्श का उत्पत्ति होने सके नहीं आत्मामें जो विमर्श होता है जो हम् ऐसे इत्यादि आकार करके जाना जाय सुतरां अहं शब्द भिन्न आत्माकी स्वरूपका स्फुरण होता नहीं ॥ १ ॥

इति भाषासारजैनसिद्धान्तरत्ने द्वितीयखण्डे प्रत्यभिज्ञादर्शननिरासनामक पञ्चम पाद ॥

इदानीं परमाणुकारणवादं निराकरोति । स च वादः इत्थं समुत्तिष्ठति । घटादीनि हि लोके सावयवानि द्रव्याणि स्वानुगतैः संयोगसचिवैस्तन्त्वादिभिर्द्रव्यैरारभ्यमाणानि दृष्टानि तत्सामान्येन यावत् किञ्चित् सावयवं तत् सर्व्वं स्वानुगतैरेव संयोगसचिवैस्तैस्तैर्द्रव्यैरारब्धमिति गम्यते । स चायमवयवावयविविभागो यतो निवर्त्तते सोऽपकर्षपर्य्यन्तगतः परमाणुः । सर्व्वञ्चेदं गिरिसमुद्रादिकं जगत् सावयवं सावयवत्वादाद्यन्तवत् । नच कारणेन

---

अब परमाणु कारण वाद निरस्त होगा । परमाणु वादका उत्थान ऐसा है । लोकमें देखा जाता है वस्त्रादि सावयव द्रव्य संयोगके सहाय सूत्रादि द्रव्य करके उत्पन्न होता है । उसको साधारण पक्षमें ए जाना जाता है, यो कुछ सावयव समस्तही स्वानुगत संयोग सहकृत थोड़ी थोड़ी द्रव्यो करके उत्पन्न हुवा है । वस्त्र अवयवी, सूत उसका अवयव । सूत अवयवी अंशु उसका अवयव । अंशु अवयवी, तदंश उसका अवयव । इस प्रकार अवयव अवयवी विभाग जिस जगहै समाप्त होय, शेष हय, जिससे पर विभाग नहीं वही क्षुद्रताका चूड़ान्त स्थान है इससे उसीका नाम परमाणु है । गिरि नदी समुद्रादि विशिष्ट यही विश्व

कार्य्यं च भवितव्यमित्यतः परमाणवो जगतः कारणमिति कणभुगभिप्रायः । तानीमानि चत्वारि भूतानि भूम्यप्तेजःपवनाख्यानि सावयवानुपलभ्य चतुर्व्विधाः परमाणवः परिकल्प्यन्ते तेषाञ्चापकर्षपर्य्यन्तगतत्वेन परतोविभागासम्भवाद्विनश्यतां पृथिव्यादीनां परमाणुपर्य्यन्तोविभागो भवति स प्रलय कालः । ततः सर्गकालेच वायवीयेष्वणुष्वदृष्टापेक्षं कर्म्म उत्पद्यते । तत् कर्म्म स्वाश्रयमणु-

---

ब्रह्माण्ड समस्तही सावयव । जिसहे तुसे सावयव है उसहे तुसे इस्का आदि अन्त है । उत्पत्ति उर प्रलय दोनुही है । कार्य्य अर्थात् जन्य वस्तु मात्रह सकारण है, विना कारणकोइ कार्य्य होता नही । उस्से जाना जाता है परमाणुराशिही जगत्का कारण है । ए कणाद मुनि कृत वैशेषिक दर्शनका मत है । कणाद उस्की कल्पना करता है, पृथ्वी अप् तेज वायु ए चारो भूत सावयव है सुतरां परमाणु चार प्रकार है भौम परमाणु जलीय परमाणु तैजस परमाणु उर वायवीय परमाणु । इस परमाणु में क्षुद्रताका विश्रान्ति उर विभागका शेष है । इस्के आगे विभाग नही । इस कारणसे तो विनश्यत् पृथिव्यादिकों के विभागका सीमा परमाणु । जिसकालमें ए पृथिव्यादि चरम विभागमें विभक्त होय अर्थात् परमाणु हो जाय उसीको प्रलय कहते हैं । प्रलयकालमें चरम अवयवही समस्त परमाणु रहते हैं सिर्फ वा

मण्वन्तरेण संयुनक्ति। ततो द्व्यणुकादिक्रमेण वायुरुत्पद्यते। एवमग्निरेवमाप एव पृथिवी च शरीरं सेन्द्रियमित्येवं सर्व्वमिदं जगदणुभ्यः सम्भवति। अणुगतेभ्यश्च रूपादिभ्यो द्व्यणुकादिगतानि रूपादीनि सम्भवन्ति तन्तुपटन्यायेनेति काणादा मन्यन्ते। तत्रेदमभिधीयते। विभागावस्थायां तावदणूनां संयोगकर्मापेक्षोऽभ्युपगन्तव्यः कर्म्मवतां तन्त्वादीनां संयोगदर्शनात्। कर्म्मणश्च कार्य्यत्वान्निमित्त

---

और अवयव रहता नहीं। फिर जब सृष्टिकाल आता है तब अदृष्ट कारण प्रथम वायवीय परमाणुमें क्रिया होता है यो यो वायवीय परमाणु क्रिया होती हैं, वही क्रिया सोही वायवीय वही परमाणुको परस्पर संयुक्त करता है करके वायवीय द्व्यणुक उत्पादन करे। क्रमसे त्र्यणुक चतुरणुक इत्यादि क्रम करके वायुनाम महाभूत उत्पन्न होता है, इसी क्रमसे अग्नि जल पृथिवी सेन्द्रिय देह अधिक क्या समस्त विश्व उत्पन्न होता है। समस्त विश्वही अणुसे उत्पन्न होता है जिस अणुमें यो यो रूप और रसादि थाया वही रूप और वही रसादिसे सोही द्व्यणुक रूपका और द्व्यणुक रसादिको का जन्म होता है। जैसे श्वेत सूतसे श्वेत वस्त्र उत्पन्न होता है, वैसेही कारण द्रव्यके रूपादिक से सोही कार्य्य द्रव्यके रूपादि होते हो ए कणादके शिष्य मानते हैं। कणादके शिष्योंके मत स्वीकार पर हम ऐसा बोलने चाहते हैं कि विभागावस्थामें अवस्थित परमाणु

किमभ्युपगन्तव्य। अनभ्युपगमे निमित्ताभावात् नाण्वाद्यं कर्म्म स्यात्। अभ्युपगमेऽपि यदि प्रयत्नोऽभिघातादिर्व्वादृष्टं किमपि कर्म्मणो निमित्तमभ्युपगम्येत तस्यासम्भवात् नैवाण्वाद्यं कर्म्म स्यात्। नहि तस्यामवस्थायामात्मगुणप्रयत्नः सम्भवति शरीराभावात्। शरीरप्रतिष्ठेऽपि मनस्यात्मनः सयोगे

---

समूहको सयोगका वा प्रथम स योगका (यो जोड़ लगाना) क्रिया सापेक्षता तुमको अवश्य स्वीकार्य है। किसवास्ते कि तुम क्रियान्वित द्रव्यको ही संयुक्त होते देखा है, निष्क्रियका सयोग देखा नहीं। क्रिया करके सयोग होता है सुतरां सयोगका निमित्त कारण क्रिया। ए नियम यो अवश्य स्वीकार्य होय, तो एभी स्वीकार्य होयगा यो क्रिया जनक पदार्थ (अर्थात् होता है) योतके उसकाभी कोइ निमित्त (कारण) है। निमित्त अस्वीकार करणेसेहीं विना कारण कुछ होता नहीं, ए नियमके अनुरोधमें परमाणुमें आद्य क्रियाका अभाव स्वीकार करणा होगा। इसी निमित्त (कारण) है भी मान लगो, वैसा होनेसे भी क्या प्रयत्न या अभिघात वा अदृष्ट? इनो में क्या सो बोलना होगा। हम देखतेहैं उस समयमें इनो तिनोमें एक का असम्भव है। जिस हेतुसे असम्भव वही हेतु परमाणुका प्रथम योग असिद्ध। शरीर नहीं रहनेमे उससमय आत्माका गुण रहता नहीं। शरीरस्थ मनके साथ आत्माका सयोग न होनेसे, आत्मामें प्रयत्न

सत्यात्मगुण प्रयत्नो जायते एतेनाऽभिघातादापि दृष्ट निमित्तं प्रत्याख्यातव्यम् । सर्गोत्तरकालं हि तत् सर्व्वं नाद्यस्य कर्म्मणो निमित्तं सम्भवति । यथा दृष्टमाद्यस्य कर्म्मणो निमित्तमित्युच्येत, तत् पुनरात्म-समवायि वा स्यादणुसमवायि वा । उभयथापि नादृष्टनिमित्तमणुषु कर्म्मावकल्प्येत, अदृष्टस्याचेतन त्वात् । न ह्यचेतन चेतनेनानधिष्ठित स्वतन्त्रं प्रवर्त्तते प्रवर्त्तयति वेति साङ्ख्यपरीक्षायामभिहितम् । आत्मनश्चानुत्पन्नचैतन्यस्य तस्यामवस्थायामचेतन-

---

गुण जन्मता नहीं। उससमयमें प्रयत्न गुण रहता नहीं, इस कहनेसे ही अभिघातादि कभी नहीं है एभी कहा गया। प्रयत्न उर अभिघात प्रभृति क्रियाके उत्पत्तिका कारण सत्य, परन्तु स् ष्टिके पीछे। प्रथम क्रियामें उनो की कारणताका असम्भव है। किसवास्ते कि उससमयमें वो सब रहते नहीं। यदि अदृष्टको ही आद्यक्रियाका कारण बोलो तब अदृष्ट आत्म समवायी हो वो, उर परमाणु समवायी हो वो, दोनु प्रकारका कोइ प्रकार अदृष्ट अणुमें आद्यक्रिया उत्पादन करणे सु समय नहीं क्यावास्ते कि अदृष्ट अचेतन है जिको चेतनाका अधिष्ठान नही तादृश कोइ अचेतन स्वत प्रवृत्त होता नहीं। दूसारे किसीको प्रवृत्त कराता नही, ए सांख्य मतके परीक्षामें प्रतिपन्न किया हुवा है। आत्मामें चेतनत्व गुण उत्पन्न न होनेसे उस

त्वात् । आत्मसमवायित्वाभ्युपगमाच्च नादृष्टमणुकर्म्मणो निमित्त स्यादसम्बन्धात् । अदृष्टवता पुरुषेणात्यणूनां सम्बन्ध इति चेत्, सम्बन्धस्य सातत्यात् प्रवृत्तिसातत्यप्रसङ्गो नियामकान्तराभावात् । तदेवं नियतस्य कस्यचित् कर्म्मनिमित्तस्याभावात् नाणुष्वाद्यं कर्म्म स्यात् । कर्म्माभावात् तन्निबन्धनः सयोग न स्यात् संयोगाभावाच्च तन्निबन्धनद्व्यणुकादि कार्य्यजात न स्यात् । सयोगश्चाणोरण्वन्तरेण सर्व्वात्मना वा

---

अवस्थामें आत्मा अचेतन रहता है। अदृष्ट आत्माहीमें रहता है, अणु में रहता नहीं। सुतरां परमाणुके साथ सम्बन्ध नहीं रहनेसे वो आद्यिक क्रियाका (अर्थात् परमाणु प्रचलनका) कारण होभी सक्ता नही । अदृष्टाधार आत्माके साथ उनो का सम्बन्ध है। आत्मा सर्व्वव्यापी इससे सम्बन्ध है ऐसा बोलनेसे भी तुमारा अभीष्ट पूर्ण होगा नहीं। सम्बन्ध सततही है सुतरां सतत सृष्टि होनेकी आपत्ति होगा। प्रलयकालमें निष्क्रिय रहता है सृष्टि-कालमें उनोंमें क्रियारम्भ होता है। इस नियमका नियामक या कारण नहीं वा दिखाने न सकोगे। तब सृष्टिकालमें परमाणुमें यो आद्यक्रिया होगी, निष्क्रिय परमाणु यो सक्रिय होगा, चलता रहेगा, उस्के प्रति कोइ निमित्त वा कारण नहीं। निमित्त न रहनेसे क्रिया होगा नही । क्रिया न रहनेसे अर्थात् परमाणु अचल सचल न होनेसे संयोग होगा नही,

यदुक्तं ब्रह्मैव सर्व्वस्य जगत कारणमिति तद्युक्तम् । कुत ? स्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्गात् । स्मृतिश्च तन्त्राख्या परमर्षिप्रणीता शिष्टपरिगृहीता, अन्याश्च तदनुसारिण्य स्मृतय एव सत्यनवकाशा

प्रलयका अभाव ऐसा प्रसङ्ग होने सकै। एव इस हेतुमेंही परमाणु कारण वाद अनुपपन्न होय अर्थात् युक्तिसिद्ध वोलकै गण्य होता नहीं ॥ १ ॥

इति भाषासारजैनमिश्रान्तरत्वे द्वितीयखण्डे
परमाणुकारणवादनिरासनामक षष्ठ पाद ॥

---

वेदान्तमें कहा है सर्व्वत्र ब्रह्म जगतका कारणहै ए कथा अयुक्त है। कारण ब्रह्म कारणवाद स्वीकार करणेसें स्मृतिका अनवकाश अर्थात् अप्रामाण्य दोष उपस्थित होय। कपिलकी तन्त्रमतके विषे (अर्थात् साख्यशास्त्रका अपर नाम षष्ठितन्त्र) स्मृतिकारों के माना है। सुतरा सो प्रमाण है। पञ्चशिख प्रभृति कतिपय ऋषियों के स्मृतिभी कपिल स्मृतिके अनुगत है। ब्रह्म कारण वाद स्वीकार करणेसे वो सब स्मृतियो का स्थल रहता नही, सुतरा वोही सवका अनवकाश होय। मनु स्मृतिके प्रतिपाद्य भिन्न, सुतरां वोही स्मृतियो का अप्रामाण्य

प्रसज्येरन्। तासु ह्यचेतनं प्रधानं स्वतन्त्रं जगतः कारणमुपनिबध्यते, मन्वादिस्मृतयस्तावच्चोदनालक्षणेनाग्निहोत्रादिना धर्मजातेनापेक्षितमर्थं समर्पयन्त्यः सावकाशा भवन्ति। अस्य वर्णस्यास्मिन् कालेऽनेन विधानेनोपनयनमीदृशश्चाचार इत्थं वेदाध्ययनमित्थं समावर्त्तनमित्थं सहधर्मचारिणीसंयोग इति। तथा पुरुषार्थांश्चतुर्वर्णाश्रमधर्मान् नानाविधान् विदधाति। नैवं कपिलादिस्मृतीनामनुष्ठेये विषये अवकाशोऽस्ति। मोक्ष-

---

नहीं है अर्थात् उनमेंसे का आनयक्य होता नहीं। सांख्यस्मृति स्वतन्त्र अचेतन प्रधानको जगत्का कारण कहते हैं। अचेतन प्रधानही सांख्यस्मृतिका प्रतिपाद्य है किन्तु मन्वादि स्मृतिका प्रतिपाद्य धर्म। मनु प्रभृति ऋषि (विधिवाक्य बोधित वा वेदवाक्यके अनुमेय) धर्म समूहका अर्थात् अग्निहोत्रादि यज्ञो का एवं तदर्पित अनन्त अनन्त अनुष्ठानों का उपदेश किया है। अमुक वर्ण अमुक समयमें अमुक प्रकार करके उपनीत होगा। अमुक वर्णका अमुक आचार, अमुक प्रकार करके वेदाध्ययन। उर अमुक प्रकार करके समावर्त्तन करे। उर अमुक विधान करके दारा ग्रहण करणा। ऐसा उपदेश किया है। चतुर्विध आश्रमका नानाप्रकार धर्म उर नानाप्रकार पुरुषार्थ समस्त उपदेश किया है। कपिल स्मृतिमें वो सब बात नहीं है। कपिलादि ऋषि

साधनमेव हि सम्यग्दर्शनमधिकृत्य ता प्रणीता । यदि तत्राप्यनवकाशा सृत्यनर्थक्यमेवासा प्रसज्येत । तस्मात्तदविरोधेन सिद्धान्तरत्ना व्याख्यातव्या. । कथं पुन ईक्षणेत्यादिभ्यो हेतुभ्योऽब्रह्मैव सर्वज्ञ जगत कारणमित्यवधारित सिद्धान्तरत्नार्थे स्मृत्यनवकाश-दोषप्रसङ्गेन पुनराक्षिप्यते। भवेदयमनाक्षेप स्वतन्त्रप्रज्ञाना परतन्त्रप्रज्ञास्तु प्रायेण जना स्वातन्त्र्येण सिद्धान्तरत्नार्थमवधारयितुमशक्नुवन्त

---

मोक्ष साधन उर तत्वज्ञान उद्देश करके स्मृति ग्रन्थ प्रणयन किया है। यो ऐसा स्मृति विषयशून्य वा स्थलशून्य होय तो अवश्यही वो सब स्मृतियो निरर्थक वा अप्रामाण्य बोल करके गणय होगी। (अभ्रान्त कपिल ऋषिकी स्मृति अर्थशून्य, अप्रमाण ए कथा किसीकु भी स्वीकार करणे योग्य नही)। इस हेतुसे तो स्मृति प्रामाण्य रखणेके वास्ते स्मृतिके अनुसार सिद्धान्तरत्न व्याख्यान करणा उचित् है। स्मृतिका स्थल रहता नहीं, इस प्रसङ्गमें जरभी पूर्व पक्ष धरणे सकै । उनो ने देख वा आलोचना किया इत्यादि कथासे तुम किस्तरे जाना कि सर्व ज्ञ ईश्वर जगत्का कारण है उस कथाका यही अर्थ ऐसा तुम किस्तरे निश्चय करोगे ? अर्थात् जिनो का ज्ञान अनाहत वा अव्याहत वे स्वय सिद्धान्तरत्नका अर्थ जाने,—उनो के निकट कोइ पूर्व पक्ष स्थान प्राप्त होता नहीं। किन्तु यो परतन्त्र

ख्यातप्रणेतृकासु स्मृतिष्ववलम्बेरन्, तद्बलेन च सिद्धान्तरत्नार्थं प्रतिपित्सेरन् । अस्मत्कृते व्याख्याने न विश्वस्युर्बहुमानात् स्मृतीनां प्रणेतृषु । कपिलप्रभृतीनाञ्चार्षं ज्ञानमप्रतिहतं स्मर्य्यते, श्रुतिश्च भवति "ऋषिं प्रसूतं कपिलं यस्तमग्रे ज्ञानैर्बिभर्त्ति जायमानञ्च पश्येत्" इति । तस्मान्नैषा मतमयथार्थं शक्यं सम्भावयितुं, तर्कावष्टम्भेन च तेऽर्थं प्रतिष्ठापयन्ति, तस्मादपि स्मृतिबलेन सिद्धान्तरत्ना व्याख्येया इति पुनराक्षेपः । तस्य समाधिर्नानाख्-

---

है वो अपने ज्ञानमें सिद्धान्तरत्नका अर्थ जानने कुं असमर्थ हैं जिनो का ज्ञान गुरु उर शास्त्रकी अपेक्षा रखे वे विख्यात ऋषि विख्यातको ग्रन्थ अवलम्बन करते हैं यो करके सिद्धान्तरत्नका अर्थ निर्णय करते हैं सुतरां स्मृतिकारी का वचन विश्वासयोग्य है। हमारे वचनमें विश्वास क्या? कौन हमारे सिद्धान्तरत्न व्याख्यामें विश्वास करेगा। कपिलादि ऋषि अप्रतिहत ज्ञानीये, ऐसा स्मृतिकारोने कहा । उर श्रुतिमेंभी कहा । यथा यो देवने प्रथम प्रसूत कपिलको जन्मतेही ऋषि अर्थात् मन्त्रार्थ द्रष्टा उर ज्ञानी किया है वोही परमदेव ईश्वरको ज्ञान गोचर करेगा इसमें तोई ऐसे ऋषिका मत अयथार्थ ए सम्भव नहीं । अपिच, उनो का वचन आज्ञा वाक्य नहीं । उनो का समस्त मत तर्क परिष्कृत । इसी हेतुसे तो वो से स्मृतिके अनुसार सिद्धान्त-

स्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्गादिति। यदि स्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्गेनेश्वरकारणवादः आक्षिप्येतैवमप्यन्या ईश्वरकारणवादिन्यः स्मृतयोऽनवकाशाः प्रसज्जेरन्। ता उदाहरिष्यामः। यत् तत् सूक्ष्ममविज्ञेयमिति परब्रह्म प्रकृत्य स ह्यन्तरात्मा भूतानां क्षेत्रज्ञश्चेति कथ्यत इति चोक्त्वा तस्मादव्यक्तमुत्पन्नं त्रिगुणं द्विजसत्तम इत्याह। तथान्यत्रापि अव्यक्तं पुरुषे ब्रह्मन् निर्गुणे सम्प्रलीयते इत्याह। अतश्च सङ्क्षेपमिमं शृणुध्वं नारायणः सर्वमिदं पुराणः। स सर्गकाले च करोति सर्गं संहारकाले च

---

सूत्रका व्याख्यान करणा योग्य है, फेर ऐसा पूर्व पक्ष उपस्थित देखके उसके समाधानके वास्ते बोलते है—एक स्मृतिका अनवकाश (वा विषयाभाव) देखके इश्वरकारणवाद नहीं अङ्गीकार करनेसे इश्वरकारणवादिनी अन्य स्मृतिका अनवकाश (विषयाभाव) प्रयुक्त अप्रामाण्य होगा। जो सब स्मृति ईश्वर कारणवादिनी है वोही सब स्मृतिया दिखाइ जाता है वही जो दुर्व्विज्ञ सूक्ष्म वस्तु स्मृति ऐसा परब्रह्मका प्रस्ताव करके पश्चात् जो प्राणी सबका अन्तरात्मा वही क्षेत्रज्ञ अर्थात् जीव है ऐसा उक्तिय। उपदेश करके बोले हे द्विजश्रेष्ठ उसीसे त्रिगुण अव्यक्त (अर्थात् प्रधान) उत्पन्न हुवा है। उर जगेही कहा है यथा—हे ब्राह्मण गुणातीत पुरुषमें लयप्राप्त होय। ऋषिगण ए स चित्त प्रतिज्ञाम

तदत्ति भूय. इति। पुराणे। भगवद्गीता-सुच—अह कृत्स्नस्य जगत: प्रभव: प्रलयस्तथा इति परमात्मानमेव च प्रकृत्यापस्तम्ब: पठति—तस्मात् काया प्रभवन्ति सर्वे स मूल शाश्वतिक: स नित्य इति। एवमनेकश: स्मृतिष्वपीश्वर: कारणत्वेनोपादानत्वेन च प्रकाश्यते। स्मृतिबलेन प्रत्यवतिष्ठमानस्य स्मृतिबलेनैवोत्तर प्रवक्ष्यामि, इत्यतोऽयमन्यस्मृत्यनवकाशदोषोपन्यास:। 　दर्शितन्तु

---

राने। पुरातन नारायणही एक समुदाय। एव वही सृष्टिकालमें सृष्टि करता है। म मारकालमें आत्मसात् करता है। पुराणमें इसतरें ईश्वरका जगत्कारण कहके बोली है। ए बात भगवद्गीतामेंभी है। इस सब जगत्के उत्पत्ति प्रलयके कारण हैं। आपस्तम्ब मुनि परमात्माका प्रस्ताव करके बोले हैं, ईश्वरसे चतुर्विध जीव देह जन्म लेते हैं, वो ईश्वर इनसबोका मूल है, वो शाश्वत है नित्य है इसवास्ते जगत्का उपादान और निमित्त कारण है सो ऐसा ऐसा बहुत स्मृतिओमें प्रकाशित है। यो केवल स्मृतियो का अवलम्बन करके प्रत्याख्यान करते है वा पूर्व्वपक्ष करते हैं उनो का स्मृतिका बल दिखाकेही प्रत्युत्तर देना उचित है इस अभिप्रायसे जाना जाता है अन्यस्मृत्यन्तरका अनवकाश अर्थात विषयाभाव दोष होता है। फल ईश्वर कारणता पक्षमेंही यो

श्रुतीनामीश्वरकारणवादं प्रति तात्पर्य्यम्। विप्रतिपत्तौ च स्मृतीनामवश्यकर्त्तव्येऽन्यतरपरिग्रहेऽन्यतरस्यापरित्यागे च सिद्धान्तरत्नानुसारिण्यः स्मृतयः प्रमाणमनपेक्षा इतराः। एतदुक्तं प्रमाणलक्षणे, विरोधित्वनपेक्षं स्यादसति ह्यनुमानम् इति। न चातीन्द्रियार्थान् सिद्धान्तरत्नमन्तरेण कश्चिदुपलभत इति शक्यं सम्भावयितुं निमित्ताभावात्। शक्यं कपिलादीनां सिद्धानामप्रतिहतज्ञानत्वादिति चेत्,

---

वेदका तात्पर्य्य है सो पूर्व्व प्रदर्शित हुवा है। जिस जगे स्मृतिमें विरोध है उस स्थलमें अवश्यही एक त्याज्य है और अन्यतर ग्राह्य है कोनसी त्याज्य और कोनसी ग्राह्य इस्का मीमांसा एही यो हमारे सिद्धान्तरत्नके अनुगामिनी है वही ग्राह्य है अन्य सकल अग्राह्य। ए हमारे पूर्व्वाचार्य्य जैमिनि मुनिनेभी कहा है। एहेतु विरोधके अभावस्थलमें अर्थात् सिद्धान्तरत्न विरुद्ध न होनेसे अनुमान अर्थात् स्मृति और प्रत्यक्ष अर्थात् श्रुति परिगृहीत न होने सके सिद्धान्तरत्न परित्याग करके कोइ कालमेभी कोइ अतीन्द्रियार्थ अर्थात् यो चक्षुरादि इन्द्रियागोचर उस्को जाने सक्ता नहीं। एकमात्र सिद्धान्तरत्नही अतीन्द्रियार्थ ज्ञानका कारण है। उस्के अभावमें अतीन्द्रियार्थ ज्ञान होने सके नहीं। कपिलादि ऋषि सिद्ध उनी का ज्ञान अनाहत अर्थात् अप्रतिहत उस्के बलसे वे वेदनिरपेक्ष होके अतीन्द्रियतत्त्व जाने एक बात

न, सिद्धेऽपि सापेक्षत्वात् । धर्म्मानुष्ठानापेक्षा हि सिद्धिः, स च धर्म्मश्चोदनालक्षणः, ततश्च पूर्व्वसिद्धायाश्चोदनाया अर्थो न पश्चिमसिद्धपुरुषवचनवशेनातिशङ्कितुं शक्यते । सिद्धव्यपाश्रयकल्पनायामपि बहुत्वात् सिद्धानां प्रदर्शितेन प्रकारेण स्मृतिविप्रतिपत्तौ सत्यां न सिद्धान्तरत्नव्यपाश्रयादन्यत् निर्णयकारणमस्ति । परतन्त्रप्रज्ञस्यापि नाकस्मात् स्मृतिविशेषविषयः पक्षपातोयुक्तः । कस्यचित् क्वचित्तु पक्षपाते सति पुरुषमतिवैश्वरूप्येण तत्त्वा-

योलने नहीं सकते हो। कारण सिद्धिभी धर्म्मसापेक्ष है धर्म्मानुष्ठान बिगर सिद्धिभी होता नहीं धर्म्म है सो वेदमूल है। प्रथमतो वेदका ज्ञान पावे वेदोक्त अर्थका अनुष्ठान उस्को पावे सिद्धि है। सुतरां परभविक सिद्धपुरुषकी कथामें पूर्व्वसिद्ध वेदार्थका अन्यथा करणा अनग्राह्य है। सिद्धपुरुष अनेक हैं उनो की स्मृतियांभी अनेक है। सुतरां सिद्धपुरुषो की भिन्न भिन्न स्मृतियां परस्पर विरुद्ध होनेसे सिद्धान्तरत्नके आश्रय बिगर वो सब विरोध भन्जन वा अर्थ निर्णय होने सक्ते नहीं। जिनो का ज्ञान परायत्त है। जर गुरु शास्त्रके आधीन है वे सब सहसा (यत्नपूर्व्वक) स्मृति विशेषका लिखित पदार्थके पक्षपाती होते हैं एभी अत्यन्त अनग्राह्य है। कोइ विषयमेंभी पक्षपाती होना आच्छा नहीं, पक्षपाती होनेसे तत्त्व व्यवस्था होता नहीं

व्यवस्थानप्रसङ्गात्। तस्मात्तस्यापि स्मृतिविप्रति-पत्त्यापन्यासेन सिद्धान्तरत्नसागानुसारविवेचनेन च सन्मार्गे प्रज्ञा संग्रहणीया। यातु श्रुति कापिलस्य ज्ञानातिशय प्रदर्शयन्ती प्रदर्शिता न तथा श्रुतिविरुद्ध मपि कापिल मत श्रद्धातु शक्यं, कपिलमिति श्रुति सामान्यमात्रत्वात्। अन्यस्य च कपिलस्य सगर-पुत्राणा प्रतप्तुर्वासुदेवनाम्न स्मरणात्। दर्शनस्य च प्राप्तिरहितस्यासाधकत्वात्। चान्या मनोर्माहात्म्य प्रख्यापयन्ति श्रुति, ये

जिसहेतुसे मानवों की बुद्धि विचित्र हैं, सब उसी हेतुसे स्मृतिके विरोध स्थलमें कौन् स्मृति कौन स्मृति श्रुतिविरोधिनी सो पूर्वक बुद्धिको सत्पथगामिनी करना श्रुति कपिल महात्मा वर्णना किया है कपिल मतमें श्रद्धा स्थापन करणा चि शब्द सामान्यवाची, (कपिल मांसार होता है एव कौन कपिल हैं उसका प्रमाण क्या है?) श्रुति वर्णना किया है सत्य किन्तु नामका अन्य कपिलका स्मरण। भेदज्ञानका उपदेश किया है।

मनुरवदत् तद्वैपजमिति। मनुना च—सर्व्वभूतेषु चात्मानं सर्व्वभूतानि चात्मनि। समं पश्यन्नात्मयाजी स्वराज्यमधिगच्छति। इति सर्व्वात्मत्वदर्शनं प्रशंसता कापिलं मतं निन्द्यत इति गम्यते। तदेतत्प्रमेयजातं प्रतापचन्द्रप्रभृतिभिरर्हन्मतानुसारिभिः प्रमेयकमलमार्त्तण्डादौ प्रवन्धे प्रपञ्चितमिति ग्रन्थभूयस्त्वभयान्नोपन्यस्तम् ॥ १ ॥

इति भाषासारजैनसिद्धान्तरत्ने द्वितीयखण्डे सर्व्वदर्शनविषयाभावनिरासनामा सप्तम पादः ॥

---

कपिलको अतिशय ज्ञानी वोल्नी है अनन्त श्रुति मनुमाहात्म्य विस्तार किया है। एव मनु सर्व्वात्मज्ञानका प्रशंसा उपलचे कपिल मतका निन्दा किया है। अधिक विस्तारका प्रयोजन क्या ? इसहेतुसे अर्हन्मतानुसारि प्रतापचन्द्र प्रभृतियो ने प्रमेय कमलमार्त्तण्डादि प्रवन्धमें विस्तार किया है ॥ १ ॥

इति भाषासारजैनसिद्धान्तरत्ने द्वितीयखण्डे, सर्व्वदर्शनविषयाभावनिरासनामक सप्तम पाद ॥

## अष्टम पाद ।

तस्मात् पुरुषार्थाभिलाषुकै पुरुषै सर्व्वदर्शन मध्ये काचित् गतिर्नानुगन्तव्या अपित्वार्हत्येवार्हणीया। अर्हत्स्वरूपञ्च चन्द्रसूरिभिराप्तनिश्चयालङ्कारे निरटङ्कि सर्व्वज्ञोजितरागादिदोषस्त्रैलोक्यपूजित । यथास्थितार्थवादी च देवोऽर्हन् परमेश्वर इति। ननु न कश्चित् पुरुषविशेष सर्व्वज्ञपदवेदनीय प्रमाणपद्धतिमध्यास्ते सद्भावग्राहकस्य प्रमाणपञ्चकस्य तत्रानुपलम्भात् तथा चोक्तं तौतातितै —

---

ये धर्म्मार्थकाममोक्ष ए चार पुरुषार्थका अभिलाष करै उनो को सकल दर्शनो के मध्यमें कोइ दर्शन स्वीकार करणा योगत्र नहीं किन्तु अर्हन्मतही अङ्गीकार करणा योगत्र है। चन्द्रसूरि प्रभृति यथार्थ व्यक्ति उने बोही निश्चयालङ्कारके विषे निरङ्कित किया है। उनो ने कहा है अर्हन् देव सर्व्वज्ञ और उनो ने रागादि समूह जय किया है त्रिभुवनस्थ प्राणीगण उनो की पूजा करतेहै और यथास्थितार्थवादी हैं साक्षात् परमेश्वर है। अब बोलते हैं कोइ पुरुष सर्व्वज्ञ पद प्रतिपाद्य है इस्में कोइ प्रमाण नहीं। जिसवास्ते जिस प्रमाण पञ्चकसे सद्भावका ज्ञान होय, वही प्रमाणपञ्चकसेती कोइ पुरुषविशेषका सर्व्वज्ञ पद प्रतिपाद्यत्व उपलब्ध होता नही। इस विषयमें शास्त्रान्तरमें

सर्व्वज्ञो दृश्यते तावन्नेदानीमस्मदादिभि.। दृष्टो न चैकदेशोऽस्ति लिङ्ग वा योऽनुमापयेत् ॥ न चागमविधि: कश्चिन्नित्यसर्व्वज्ञवोधक:। न च तत्रार्थवादाना तात्पर्य्यमपि कल्पते ॥ न चान्यर्थप्रधानैस्तैस्तदस्तित्व विधीयते। न चानुवदितु शक्य. पूर्व्वमन्यैरवोधित: ॥ अनादेरागमस्यार्थो न च सर्व्वज्ञ आदिमान्। कृत्रिमेणात्वसत्येन स कथ प्रतिपाद्यते ॥ अथ तद्वचनेनैव सर्व्वज्ञोऽन्यै: प्रतीयते। प्रकल्पेत कथं सिद्धिरन्योन्याश्रययोस्तयो: ॥ सर्व्वज्ञो-

---

कहा है। हमर सवक किसीको भी सर्व्वज्ञ देखते नहीं और कभीभी सर्व्वज्ञका एक देश देखा नहीं परन्तु ऐसा कोइ कारणभी नहो है यो उससे ती अनुमान करणे सके। उत सर्व्वज्ञ वोधक कोइ आगमविधिभी नहीं अर्थात् कोई आगम द्वाराभी प्रमाणीकृत होता नहो। यो कोई पुरुष विशेषको सर्व्वज्ञ कहने सके, परन्तु उसमें अर्थवादकाभी तात्पर्य्य परिकल्पना होने सके नहीं। यो अनुर्थ स्वीकार करें योभी सर्व्वज्ञका अस्तित्वविधान करें नही। एव पहले किसीने वो प्रतिपादन किया है ऐसाभी कोइ वोलने सक्ता नहीं। अनादि आगमकाही अर्थ हुआ है। एव सर्व्वज्ञ आदिमान नहीं है सुतरा कृत्रिम असत्य प्रमाणमें वोही सर्व्वज्ञ प्रतिपादित होने सके नही। यदि वही वाक्यमात्रही अन्य अन्य व्यक्ति सर्व्वज्ञ वोलके जानने सके, तो

ज्ञतया वाक्य सत्यं तेन तदस्तिता। कथं तदुभयं सिध्येत् सिद्धमूलान्तरादृते॥ असर्व्वज्ञप्रणीतात्तु वचनान्मूलवर्जितात्। सर्व्वज्ञमवगच्छन्तस्तद्वाक्योत्त न जानते॥ सर्व्वज्ञसदृशं किञ्चिद् यदि पश्येम सम्प्रति। उपमानेन सर्व्वज्ञ जानीयाम ततो वयम्॥ उपदेशोऽपि बुद्धादीना धर्म्माधर्म्मादिगोचर। अन्यथा नोपपद्येत सार्व्वज्ञ्य यदि नाभवदित्यादि॥ अथ प्रतिविधीयते यदभ्यधायिसद्भावग्राहकस्य

---

बिस्तरे परस्पर आश्रयीद्वयका सिद्धि होने सके। "सर्व्वज्ञका कहा वाक्यही सत्य है" इस प्रमाणमें सर्व्वज्ञका अस्तिता जाना जाता है, किन्तु सिद्ध मूलोत्तर बिगर बिस्तरेमे उक्त उभयका सिद्धि होने सके। और यो असर्व्वज्ञ प्रणीत मूलवर्जित वचनमें सर्व्वज्ञका स्वीकार करते है वे सब उनो की वाक्योंमि जानने नहीं, अर्थात् जिस वाक्यका कोइ मूल नही, उस वाक्यमें सर्व्वज्ञ स्वीकृत होते सकता नही। यदि सम्प्रति कोई पदार्थ सर्व्वज्ञके सदृश देखने पावे, तो इस उपमान प्रमाणमे भी सर्व्वज्ञ जान सके, अर्थात् एवस्तु सर्व्वज्ञके सदृश है, ऐसा देखे तो सर्व्वज्ञका उपमान प्रमाणसे अस्तिता स्वीकार करें यदि सर्व्वज्ञत्वही नही है, तो अनत्र कोइ रूपमें धर्म्माधर्म्म गोचर बुद्धादि मुनिगणोका उपदेश सिद्ध होने सके नही। सर्व्वज्ञ भिन्न और कोइ व्यक्ति धर्म्माधर्म्मका उपदेश करणे समर्थ होय।

प्रमाणपञ्चकस्य सत्त्वानुपलम्भादिति तदयुक्तं तत् सद्भावादेकस्यानुमानादेः सद्भावात्। तथाहि कश्चिदात्मा सकलपदार्थसाक्षात्कारी तद्ग्रहणस्वभावत्वे सति प्रक्षीणप्रतिबन्धप्रत्यय तत् तत्साक्षात्कारि यथा अपगततिमिरादिप्रतिबन्ध रूपसाक्षात्कारि। तद्ग्रहणस्वभावत्वे सति प्रक्षीणप्रतिबन्धप्रत्ययश्च कश्चिदात्मा तस्मात् सकलपदार्थसाक्षात्कारीति न तावदशेषार्थग्रहणस्वभावत्वमात्मनोऽसिद्धं चोदना-

---

पूर्वोक्त प्रश्नावका समाधान। पूर्व कहा है—सद्भाव प्रमाण पञ्चककी अनुपलब्धि हेतुक कोइ पुरुष सर्व्वज्ञ पद प्रतिपाद्य होने सके नहीं ए युक्त नहीं। कारण एक अनुमान प्रमाण सेही सर्व्वज्ञका प्रतीति होता है। इस दृष्टमें ऐसा अनुमान होता है यो कोइ एक आत्मा सकल पदार्थ साक्षात्कारी है जिस हेतुसे तो आत्माका सम्पूर्ण पदार्थ ग्रहण करणेका सामर्थ्य है एव उस्को सकल प्रतिबन्धक क्षयप्राप्त हुए हैं अर्थात् आत्माको कोइ प्रतिबन्धक नहीं, और इसमें ऐसा व्याप्ति स्थिर है यो यो पदार्थ ग्रहणस्वभावशाली क्षीण हुआ प्रतिबन्धक होय वोही पदार्थही साक्षात् करणे सके, वोही जैसे अन्धकारादि प्रतिबन्धक अपगत होनेसेही चक्षु रूपका साक्षात करती है। कोइ आत्माभी वस्तु स्वभाव साक्षात्कारशाली होवे प्रतिबन्धकही न हाजि सके। इस हेतुसे वही आत्माही सकल पदार्थ साक्षात्

बलान्निखिलार्थज्ञानात् नान्यथानुपपत्त्यासर्व्वमनै कान्तात्मकं सत्त्वादिति व्याप्तिज्ञानोत्पत्तेश्च। चोदनाहि भूतं भवन्तं भविष्यन्तं सूक्ष्मं व्यवहितं विप्रकृष्टमित्येवं जातीयकमर्थमवगमयतीत्येवं जातीय कैरध्वरमीमांसा गुरुभिर्व्विधिप्रतिषेधविचारणा निबन्धनं सकलार्थविषयज्ञानं प्रतिपद्यमानै सकलार्थग्रहणस्वभावकत्वमात्मनोऽभ्युपगतम्। न चाखिलार्थप्रतिबन्धकारणप्रक्षयानुपपत्ति सम्यग्दर्शनादित्रयलक्षणस्यावरणप्रक्षयहेतुभूतस्य सामग्री-विशेषस्य प्रतीतत्वात् अनया मुद्रयापि क्षुद्रोपद्रवा-

---

कारी। वस्तुतस्तु,सेती आत्माका समस्तार्थ ग्रहण स्वभाव असिद्ध नही है। जिस हेतुसेती चोदना वत्सेती निखिलार्थ ज्ञान प्रयुक्त अन्य कोन रूपमेंभी उपपत्ति नही, आत्माका चोदनाही अतीत वर्त्तमान भविष्यत् विषय समस्त ये वे सूक्ष्म व्यवहित विप्रकृष्ट प्रभृति पदार्थोंका ज्ञान करती है। इसमेती यो अध्वर मीमांसाके गुरुभी एव विधि उर प्रतिषेध विचार निबन्धन सकलार्थ विज्ञान प्रतिपादन करते हैं, वेभी आत्माका सकलार्थ ग्रहण स्वभाव स्वीकार करते हैं आत्मा यो सकलार्थ ग्रहण करणे सके, उस्में प्रतिबन्धकस्वरूप आवरण क्षयकाभी अनुपपत्ति नही है, जिस हेतुमे सम्यग्दर्शनादि लक्षण एव आवरणक्षयका हेतुभूत सामग्रीविशेष प्रतीत है। उर आवरणक्षयसेती समस्त

धिद्रव्या'। नन्वावरणप्रचयवशादशेषविषयं विज्ञान-विशद मुख्यप्रत्यक्ष प्रभवतीत्युक्त तदयुक्त तस्य सर्व्वज्ञ-स्यानादिसत्त्वे नावरणस्यैवासम्भवादिति चेन्न अनादिमुक्तत्वस्यैवासिद्धे न सर्व्वज्ञोऽनादिमुक्त. मुक्तत्वा-दितरमुक्तवत् बद्धापेक्षया च मुक्तव्यपदेश: तद्रहितेचा-स्याभाव स्यादाकाशवत्। नन्वनादे. क्षित्यादि-कार्य्यपरम्पराया. कर्त्तृत्वेन तत्सिद्धि तथाहि, क्षित्यादिक सकर्त्तृक कार्य्यत्वाद्घटवदिति तदप्यसमी-चीन कार्य्यत्वस्यैवासिद्धे। न च सावयवत्वेन तत्साधनमित्यभिधातव्य यस्मादिद विकल्पजालमव-

---

विषय प्रत्यक्ष होते हैं एभी कहा है किन्तु एभी युक्तियुक्त नहीं। कारण सर्व्वज्ञ आत्मा अनादि और अनन्त, उसको कोई रूप आवरण सम्भव होता नहीं। एभी बोला जाय नहीं, जिस हेतुसे अनादिको भी मुक्तत्वका असिद्धि है। इतरमुक्तकी परे सर्व्वज्ञ अनादि मुक्त नहीं। बन्धकी अपेक्षासे ही मुक्तका व्यपदेश होता है। जिस्को बन्ध नहीं उस्को मुक्त कहा जाय नहीं। अब यो वले, सर्व्वज्ञ अनादि होनेसेभी क्षित्यादि कार्य्य पदार्थ समूहका कर्त्तृत्व प्रयुक्त उस्को मुक्तत्वकी सिद्धि है, पृथिव्यादि पदार्थ समस्तही सकर्त्तृक, जिसहेतुसे घटादिककी परे कार्य्य रूप होनेसे, एभी समीचीन नहीं है। जिससेती कार्य्यत्वका ही असिद्धि है। सावयवत्व प्रयुक्त मुक्तत्वकी सिद्धि है, एभी

तरति। सावयवत्वं किमवयवसंयोगित्वम् अवयवसमवायित्वम् अवयवजन्यत्वं समवेतद्रव्यत्वं सावयवबुद्धिविषयत्वं वा? न प्रथमं आकाशादावनैकान्त्यात्। न द्वितीयं सामान्यादौ व्यभिचारात्। न तृतीयं साध्याविशिष्टत्वात्। न चतुर्थं विकल्पयुगलार्गलग्रस्तत्वात्। समवाय

---

कहा जाय नहीं, जिसहेतुसेती अन्यत्र आत्मा विकल्पग्रासमें उत्तीर्ण है। अब आशङ्का होता है, यो सावयवत्व है सो क्या अवयवसंयोगित्व है वा अवयवसमवायित्व है वा अवयव जन्यत्व है वा समवेतद्रव्यत्व अथवा सावयवबुद्धिविषयत्व? प्रथम यो अवयवसंयोगित्व सो होने सके नहीं। अवयव संयोगित्व होनेसे, आकाशादिकके विषे अनैकान्तत्वरूप दूषण उपस्थित होता है। आकाश नित्य पदार्थ वो किसतरे कार्य्यरूप हो सके? द्वितीय अवयवसमवायित्व एभी होने सके नही। उसतरे होनेसे जाति प्रभृतिमें व्यभिचार होय। अर्थात् जाति प्रभृतिभी नित्य पदार्थ सुतरां वोभी किसतरे कार्य्य होने सके? तृतीय अवयवजन्यत्वभी होने सके नही। उसतरे होनेसे साध्यका अविशिष्टत्व होने सके। अर्थात् ईश्वर निरवयव। ईश्वरसेती अवयवी पदार्थका किसतरे आविर्भाव होने सके? चतुर्थ समवेत द्रव्यत्वभी होने सके नही। समवेतद्रव्यत्व बोलनेसे दोय मन्दे रूप अर्गल गलग्रह होने सके, प्रथम समवायसम्बन्धमात्रवत् द्रव्यत्व

सम्बन्धमात्रवद्द्रव्यत्वं समवेतद्रव्यत्व अन्यत्र समवेतद्रव्यत्वं वा विवक्षित हेतु. क्रियते। आद्ये गगनादौ व्यभिचार तथापि गुणादिसमवायत्व-द्रव्यत्वयो. सम्भवात्। द्वितीये साध्याविशिष्टता अन्यशब्दार्थेषु समवायिकारणभूतेष्ववयवेषु समवायस्य साधनोयत्वात्। अभ्युपगमैतदभानि वस्तुतस्तु समवाय एव न समस्ति प्रमाणाभावात्। नापि पञ्चम. आत्मादिनानैकान्तात्तस्य सावयवबुद्धिविषयत्वेऽपि कार्य्यत्वाभावात्। न च निरवयवत्वेऽप्यस्य सावयवार्थ-

---

ही क्या समवेतद्रव्यत्व वा ? जर अगो समवेत द्रव्यको ही समवेत द्रव्यत्व बोला गया है। ऐसा हेतु उपन्यास होने सके। आद्य अर्थात् समवायसम्बन्धमात्रवत् द्रव्यत्व कहनेसे आकाशादिकमे व्यभिचार होता है। आकाशमे गुणादि समवायत्व उर द्रव्यत्व ए दोनु ही है दुसरा बोलनेसे, साध्यका अविशिष्टता होय। किस्वास्ते समवायमे कारणभूत अवयव समूहको विषे समवायका साधनीयत्व होने सके ऐसो मत स्वीकार करके कहा हुआ है। वस्तुत समवायही नहीं। किसवास्ते कि इसके अस्तितामे कोइ प्रमाण नहो। पञ्चम अर्थात् सावयवबुद्धिविषयत्वभी होने सके नहीं, उस्तरे होनेसे, आत्मादिकके साथ अनैकान्तिकात्व होने सके। पक्षान्तरके विषे आत्माको सावयव बुद्धि विषय बोलके स्वीकार करनेसेभी, वो कभी कार्य्य होने सके नहीं। आत्मा

सम्बन्धेन सावयववुद्धिविषयत्वमौपचारिकमित्येष्टव्य निरवयवत्वे व्यापित्वविरोधात् परमाणुवत् । किञ्च किमेक कर्त्ता साध्यते किंवा स्वतन्त्र ? प्रथमे प्रासादादौ व्यभिचार स्थपत्यादीना बहूना पुरुषाणा तत्र कर्तृत्वोपलम्भादनेनैव सकलजगज्जननोत्पत्ता-वितरजैयर्थ्यञ्च। तदुक्तं वीतरागस्तुतौ—कर्त्तास्ति नित्यो जगत. स चैक. स सर्व्वग स स्ववश स सत्य.। इमा कुहेया कुविडम्बना स्यु स्तेषा न येषामनुशासकत्व मिति । अन्यत्रापि—कर्त्ता न तावदिह कोऽपि,

निरवयव होनेसे भी देहके साथ सम्बन्ध वयसे तो उस्को सावयव वुद्धि विषयत्व औपचारिक, ऐसाभी इष्ट होने सके नहीं। किसवास्तें कि, निरवयव पदार्थमातहीं परमाणुकी परे व्याप्यत्व विरोधी हैं। करभी कर्त्ता एकमात्र कि स्वतन्त्र कर्त्ता हैं? यो एकमात्र कर्त्ता स्वीकार किया जाय, तो प्रासादादिको के विषे व्यभिचार घटे। बहु स्थपति पुरुष एकत्र होके प्रासादादि निर्माण करते हैं। इसतरके अर्थात् एकमात्र कर्त्ता स्वीकार करणेमें समस्त लोकको उत्पत्ति विषमें अन्य अन्य कर्त्तृ गणो का वैयर्थ्य होगा। वीतराग स्तुतिके विषे कहा है। यथा—जगत्का यो कर्त्ता, वो नित्य अर एक है। ऐसे वो सर्व्वव्यापी अर स्ववश सत्यस्वरूप हैं। ऐसा यो स्वीकार किया जाय तो अन्य अन्य कर्त्तृ गणो का अनुशासकत्व नहीं, उनो की विडम्बना

यथेच्छया वा दृष्टो ऽन्यथा घटकृतावपि तत्प्रसङ्गः।
कार्य्यं किमत्र भवतापि च तक्षकाद्यैराहता च
त्रिभुवनं पुरुषः करोतीति। तस्मात् प्रागुक्तकारण-
त्रितयबलादावरणप्रक्षये सार्व्वज्ञ्यं युक्तम्। न चा-
प्तोपदेष्टृन्तराभावात् सम्यग्दर्शनादित्रितयानुपपत्ति-
रिति भननीयं पूर्व्वं सर्व्वज्ञप्रणीतागमप्रभवत्वा-
दस्मदाद्यशेषार्थज्ञानस्य। न चान्योन्याश्रयतादि-
दोषः आगमसर्व्वज्ञपरम्परया बीजाङ्कुरवदना-
दित्वङ्गीकारादित्यलम् ॥ १ ॥

---

होय। अर जैसेभी कहा है, इस समारस्था यथेच्छ कोइ कर्त्ता नहीं किसवास्ते कि कुम्भकारके कार्य्यमें उस्का प्रसङ्गका अन्यथा भाव देखा जाता है। अर पुरुष क्या सुमारेको अर सूत्रधरादिको को एकत्र समवेत करके, यह त्रिभुवनका सृष्टि किया है? इस कारणसे पूर्व्वोक्त कारणत्रयके प्रभावमें आवरणका एक कालीन क्षय होनेसे, जीवका सर्व्वज्ञता युक्त होती है। इस जीवका अन्य कोइ उपदेष्टा नहीं। सुतरां उस्को सम्यग्दर्शनादित्रितयकी अनुपपत्ति होय सके ऐसाभी बोला जाय नहीं। यो यो जीव प्रथमतर्णमें सर्व्वज्ञ हुयथे उनोंके कहे भए आगमोंसेती इस्का ऐसा सर्व्वज्ञत्व समुद्भूत हुवा है। इस विषयमें अन्योन्याश्रयादिदोष होने सकते नहीं। बीजाङ्कुरकी परे आगम अर सर्व्वज्ञ परम्परा अनादि बोलके परिगृहीत होती है ॥ १ ॥

रत्नत्रयपदवेदनीयतया प्रसिद्ध सम्यग्दर्शना दित्रितयमर्हत्प्रवचनसंग्रहपरे परमागमसारे प्ररूपितं, सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग इति। विहितश्च योगदेवेन येन रूपेण जीवाद्यर्थावस्थितस्तेन रूपेणार्हता प्रतिपादिते तत्त्वार्थे विपरीताभिनिवेशरहितत्वाद्यपरपर्याय श्रद्धानं सम्यग्दर्शनमिति। तथा च तत्त्वार्थसूत्रं—तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनमिति। अन्यदपि रुचिर्जिनोक्त तत्त्वेषु सम्यक्श्रद्धानमुच्यते। जायते तन्निसर्गेण गुरोरधिगमेन वेति। परोपदेशनिरपेक्षमात्मस्वरूप

---

जो सम्यग्दर्शनादित्रितयरत्नत्रयपदवेदनीय बोलके प्रसिद्ध है जो अर्ह त्प्रवचनस ग्रहविषयक परमागमसार ग्रन्थके विषे विशेष रूप करके विहित हुए है। उसमें लिखा है, सम्यग्दर्श न ज्ञान एव चारित्र यही तिन साक्षात् मोक्षमार्ग है। योगदेव कर्त्तृ क यही विहित हुवा है, जो जिसरूपमें जीवादि सकल विषयका व्यवस्थापना करा है, अर्ह त् कर्त्तृ क उसीरूप तत्त्वार्थ प्रतिपादित हुवा है। उस तत्त्वार्थमें विपरीत अभिनिवेश त्यागादिपूर्व्व क श्रद्धानको सम्यग्दर्शन कहा है। तथाहि तत्त्वार्थ सूत्र। तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शन। और रूपभी कहा है यथा—जिन जिनो ने तत्व निर्द्देश किया है उसमें जो सम्यग रुचि उसको ही श्रद्धान कहाहै। निसर्ग-एव गुरुका अधिगम यही दोनुपायमें

निसर्गः। व्याख्यानादिरूपपरोपदेशजनितं ज्ञानमधिगमः। येन स्वभावेन जीवादयः पदार्थाः व्यवस्थिताः तेन स्वभावेन मोहसंशयरहितत्वेनावगमः सम्यग्ज्ञानम्। यथोक्तं—यथावस्थिततत्त्वानां सङ्क्षेपाद् विस्तरेण वा। योऽवबोधस्तमत्राहुः सम्यग्ज्ञानं मनीषिण इति॥ तज्ज्ञानं पञ्चविधं, मतिश्रुतावधिमनःपर्य्यायकेवलभेदेन। तदुक्तं—मतिश्रुतावधिमनःपर्य्यायकेवलानि ज्ञानमिति। अस्यार्थः—ज्ञानावरणक्षयोपशमे सति इन्द्रियमनसी पुरस्कृत्य व्यापृतं मनः यथार्थं मनुते सा मतिः। ज्ञानावरणक्षयोपशमे

---

समुद्भूत होता है। उसमें परोपदेश निरपेक्ष जो आत्मस्वरूप उसको निसर्ग कहते हैं। और व्याख्यानादिरूप परोपदेश जनित ज्ञानका नाम अधिगम। एवं जिस स्वभाव करके जीवादि समस्त पदार्थ रहे हैं, उसी स्वभावसे ही मोहादिरहित जो अवगम होय, उसको सम्यग ज्ञान कहते हैं। तथाहि कहा है यथा, यथावस्थित सर्व तत्त्वोंका सङ्क्षेप वा विस्तारसे ही जो अवबोध अर्थात् परिज्ञान उसको मनीषिगण सम्यक् ज्ञान निर्देश करते हैं। सो ज्ञान ५ प्रकार—मति१ श्रुति२ अवधि३ मन पर्य्याय४ और केवल५। उसमें ज्ञानावरणका अधिक क्षय होनेसे मन जो यथार्थ मनन करै उसको मति कहते हैं। ज्ञानावरणके क्षयोपशम होनेसे, मतिजनित स्पष्ट ज्ञानको

सति मतिजनितं स्पष्ट ज्ञान श्रुतम्। असमाग्-दर्शनादिगुणजनितक्षयोपशमनिमित्तम् अवच्छिन्न विषयं ज्ञानमवधि। ईर्ष्यान्तराय ज्ञानावरणक्षयोपशमे सति परमार्थागतस्यार्थस्य स्फुट परिच्छेदक ज्ञानं मन पर्य्याय। तप क्रियाविशेषान् यदर्थ सेवन्ते तपस्विनस्तज्ज्ञानमनाज्ञानासस्पृष्टं केवलम्। तत्राद्यं परोक्ष प्रत्यक्षमनात्। तदुक्तं,—विज्ञान स्वपराभासि प्रमाण वाधवर्जितम्। प्रत्यक्षञ्च परोक्षञ्च द्विधामेव . विनिश्चयादिति। अन्तर्गणिकभेदस्तुसविस्तरस्तत्रैवागमेऽवगन्तव्य। संसरणकर्म्मोच्छित्ता,—

श्रुति कहते हैं। अवधि असमाग्दर्शनादिगुणजनित वा ज्ञानावरण¹ क्षयोपशम निमित्त यो मर्यादाविषयक ज्ञान उसको अवधि कहते है। ईर्षान्तराय ज्ञानावरणका च्छान्त क्षय होनेसे, परका मनो गत विषयका सुस्पष्ट परिच्छेदक ज्ञान उसको मन पर्य्याय ज्ञान कहते है। ओर तपस्वीगण जिसके निमित्त तप क्रिया विशेष करते हैं, ओर जिसमें अनाज्ञानका स स्पर्श मात्र नहीं, उस ज्ञानका नाम केवल। उसमें प्रथमको परोक्ष ज्ञान कहते है ओर अपरको प्रत्यक्ष कहते हैं। सो कहा है, यथा यो अपणेको ओर अनाको विशेषरूपसे प्रतिपादित करें, सोही बाधावर्ज्जित विज्ञान प्रमाण होता है। सो दो प्रकार—प्रत्यक्ष ओर परोक्ष। इसमें यो अवान्तरभेद हैं, सो आगमोमे विस्तार जानने। जिस्कर्के वारवार गमनागमन

उद्यतस्य श्रद्दधानस्य ज्ञानवतः पापगमणकारण-
क्रियानिवृत्तिः सम्यक्चारित्रम्। तदेतत् सप्रपञ्चमुक्त-
मर्हता। सर्वथावद्ययोगानां त्यागश्चारित्रमुच्यते।
कीर्तितं तदहिंसादिव्रतभेदेन पञ्चधा॥ अहिंसा-
सूनृतास्तेयब्रह्मचर्य्यापरिग्रहाः। न यत्प्रमाद-
योगेन जीवितव्यपरोपणम्॥ चराणां स्थावराणाञ्च
तदहिंसाव्रतं मतम्। प्रियं पथ्यं वचस्तथ्यं सूनृतं-
व्रतमुच्यते॥ तत्तथ्यमपि नो तथ्यमप्रियञ्चाहितञ्च
यत्। अनादानमदत्तस्यास्तेयव्रतमुदीरितम्॥

---

होय उन सकर्मो का उच्छेद करनेमें समुद्यत श्रद्धावान् ज्ञानवान् पुरुषको पापसमूहका हेतु क्रिया निवृत्ति उसको सम्यक् चारित्र कहते हैं। अर्हन्तोंने उसको विस्तारसे तो कहा है। यथा निन्दित जो विषयसङ्ग उसका जो सर्व प्रकारसे परिहार करना उसको चारित्र कहते हैं। सो चारित्र अहिंसादिव्रतभेदो करके ५ प्रकारका है,—अहिंसा१ सूनृत२ अस्तेय३ ब्रह्मचर्य्य४ और अपरिग्रह५। उनके विषे प्रमादवशसे तो स्थावर और जङ्गम पदार्थ समुदायको जीवों का जो रक्षण करना उसको अहिंसा कहते हैं। प्रिय, हित और तथ्यवाक्यका नाम सूनृत व्रत। जिससे लोकोंको अप्रीति और अहित होय वा जन्मे, उस वचनोंकी सत्यता होनेसे भी सत्य नहीं होता। किसीने कोइ द्रव्य नहीं दिया उसको नहीं लेना उसका नाम 'अस्तेय व्रत। मन करके,

दिव्यौदरिकयामाथा कृतानुमतकारितैः । मनो वाक्कायतस्त्यागो ब्रह्माष्टादशधा मतम् ॥ सर्व्वभावेषु मूर्च्छायास्त्याग स्यादपरिग्रह । यदसत्स्वपि जायेत मूर्च्छया चित्तविप्लव ॥ भावनाभिर्भावितानि पञ्चभि' पञ्चधा क्रमात् । महाव्रतानि लोकस्य साधयन्त्यव्ययं पदमिति ॥ भावनापञ्चकप्रपञ्चनञ्च प्ररूपितम् । हास्यलोभभयक्रोधप्रत्याख्यानैर्निरन्तरम् ॥ आलोच्य-भाषणेनापि भावयेत् सूनृत व्रतमित्यादिना ॥ एतानि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मिलितानि मोक्ष-

---

वर्जन करके, काय करके औदरिक वैक्रिय मैथुनका जो त्याग उसको ब्रह्मचर्य्य कहते हैं। उसके रूपभेद हैं विषय समस्तका अभाव रहनसेभी तदुत्पन्न मूर्च्छा अर्थात् मोहका कोइरूप आविष्कार नहीं होनेका नाम अपरिग्रह। उसी प्रकार अभाव होनेसे मूर्च्छा उपस्थित होके चित्त विप्लव होता है। यह जो महाव्रत समस्त यथाक्रमसे जो पांच प्रकार भावना करके भावित होनेसेही लोक मोक्षपदको साधन करे। एही पञ्च प्रकार भावना सविस्तर वर्णना किया है, यथा हास्य१ लोभ२ भय३ क्रोध इनो का त्याग कर भाषण इत्यादि सहाय करके आलोचना करके निरन्तर सुनृत व्रतका भावना करणा। कहा हुवा सम्यग्दर्शन और सम्यग् ज्ञान और सम्यक् चारित्र मिलित होके मोक्ष सिद्ध करे। मिलित नहीं होनेसे एकाकी मोक्ष साधनमें समर्थ नहीं।

कारणं न प्रत्येकं यथा रसायनज्ञानश्रद्धानावरणानि सम्भूय रसायनफलं साधयन्ति न प्रत्येकं ॥ अत्र संक्षेपतस्तावज्जीवाजीवाख्ये द्वे तत्त्वे स्तः तत्र बोधात्मको जीवः अबोधात्मकस्त्वजीवः । तदुक्तं पद्मनन्दिना—चिदचिद्द्वे परे तत्त्वे विवेकस्तद्विवेचनम् । उपादेयमुपादेयं हेयं हेयञ्च कुर्व्वतः ॥ हेयं हि कर्तृरागादि तत् कार्य्यमविवेकिनः । उपादेयं परं ज्योतिरुपयोगैकलक्षणमिति । सहज-चिद्रूपपरिणतिं स्वीकुर्व्वाणे ज्ञानदर्शने उपयोगः स

---

जैसा रसायन ज्ञान श्रद्धान अर आचरण ए सब मिलित होके रसायन फल साधन करे एकाकी होने सके नही। इसमें संक्षेप विधान करके जीव अर अजीव नामक द्विविध तत्त्व सन्निविष्ट हुए हैं। तिसमें बोधात्मक जीव अर अबोधात्मक अजीव। भगवान पद्मनन्दने कहा है—जैसा चित् अर अचित् भेद करके परम तत्त्व दो प्रकार है। जो उपादेय है उसका ग्रहण है। अर यो हेय है उसका परिहार पूर्व्वक कहे हुए दोनो तत्त्वोंको विवेचना अर्थात् विशेष विचार करणा उसको विवेचन कहते हैं। हेय शब्द करके रागादि समझने। ए रागादि अविवेकका कार्य्य है। यो उपादेय है वोही परम ज्योति। उपयोग उसी ज्योतिका एकमात्र लक्षण। उसमें सहज चिद्रूप परणति स्वीकार करणे से ज्ञान दर्शनका यो उपयोग अर्थात्

परस्परप्रदेशात्तु प्रदेशबन्धात् कर्म्मणैकीभूतस्यात्मनोऽन्यत्वप्रतिपत्तिकारणं लक्षणं भवति । सकलजीवसाधारणं चैतन्यमुपशमक्षयक्षयोपशम-वशादौपशमिकक्षयात्मकक्षयोपशमिकभावेन कर्म्मोदयवशात् कलुषाद्याकारेण च परिणतजीवपर्य्याय-जीवविवक्षाया स्वरूप भवति ॥ यदवोचद्वाचका-चार्य्य'—औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिकपरिणामिकौ चेति । अनुदयप्राप्तिरूपे कर्म्मण उपशमे सति जीवस्योत्पद्यमानोभाव औप-शमिकं यथा पङ्केन कलुषता कुर्व्वति कतकादि-द्रव्यसम्बन्धादध पतिते जलस्य स्वच्छता । कर्म्मण

---

अधिकार जमाता है, उसको ही कर्म्मके साथ एकीभूत आत्माका अन्यत्व प्रतिपत्तिका हेतुभूत लक्षण कहते हैं। और समस्त जीव साधारण चैतन्यही उपशम क्षय और क्षयोपशमवशसेती उपशम क्षयात्मक यो क्षयोपशमिक एही द्विविध भाव सहाय करकै कर्म्मोदय भाव प्रयुक्त कलुषरूप अनाकार स्वरूपमें परिणत होता है। भगवान वाचकाचार्य्य कहते हैं, जीवके औपशमिक, क्षायिक, मिश्र, औदयिक और परिणामिक, एही पञ्चविध भावकी नाम सत्त् है। उसमें कर्म्मका अनुदय प्राप्तिरूप उपशम होनेसे जीवका उत्पद्यमान यो भाव उसको औपशमिक कहते हैं। जैसे पङ्क कलुषत्व सम्पादन पूर्व्वक निर्म्मली आदि

क्षयोपशमे सति जायमानो भावः क्षायिकः यथा—मोक्षः। उभयात्मभावो मिश्रः यथा—जलस्यार्धस्वच्छता। कर्मोदये सति भवन्भावः औदयिकः। कर्मोपशमाद्यनपेक्ष्य स्वतोभावश्चेतनत्वादिः पारिणामिकः। तदेतत् तत्त्वं यथासम्भवं भव्यस्याभव्यस्य वा जीवस्य तत्त्वं स्वरूपमिति सूत्रार्थः। तदुक्तं स्वरूपसम्बोधने—ज्ञानाद्भिन्नो न चाभिन्नो भिन्नाभिन्नः कथञ्चन। ज्ञानं पूर्वापरीभूतं सोऽयमात्मेति कीर्तितः इति ॥ २ ॥

---

इस सम्बन्धसे ही अथ पतित होनेसे, जलकी जैसे निर्मलता होती है। ऐसे ही कर्मका उपशम होनेसे, जीवका जायमान भावको उपशम कहते हैं। तथा बिल कुल क्षय होनेसे जो भाव उसको क्षायिक कहते हैं जैसा मोक्ष उभयरूप उभयात्मक भावको मिश्रभाव कहते हैं। जैसा जलकी अर्द्ध स्वच्छता। कर्मका उदय होनेसे, जो भाव आविर्भाव होय उसको औदयिक भाव कहते हैं। तथा कर्मोंके उपशमादि अपेक्षा परिहार करके जो स्वतः भाव होय उसको पारिणामी भाव कहते हैं। चेतनत्वादि यही आत्मा रहे हैं। इन्हीका नाम तत्व। अर्थात् यथासम्भव जीवको भव्यत्व वा अभव्यत्व जीवके तत्, अर्थात् स्वरूप, यही सूत्रका अर्थ। स्वरूपसम्बोधनमें कहा है—जैसा जो ज्ञानसे भिन्न नहीं है अथवा अभिन्न कथंचित् भिन्न वा अभिन्नभी है उसको आत्मा कहते हैं। यही आत्मा पूर्वापरीभूत ज्ञानस्वरूप ॥ २ ॥

ननु भेदाभेदयोः परस्परपरिहारेणावस्थाना-दन्यतरस्यैव वास्तवत्वादुभयात्मकत्वमयुक्तमिति चेत्त-दयुक्तं । बाधे प्रमाणाभावात् । अनुपलम्भो हि बाधकः प्रमाणं । न सोऽस्ति समस्तेषु वस्तुष्वनेक-रसात्मकस्य स्याद्वादिनो मते सुप्रसिद्धमित्यलम् । अथेदं पुनर्जीवाजीवयोरेव प्रपञ्चमाचष्टे जीवाकाश-धर्माधर्मपुद्गलास्तिकायभेदात् । एतेषु पञ्चसु तत्त्वेषु कालत्रयसम्बन्धितया स्थितिव्यपदेशः अनेक-

---

यो योलोकि, भेद और अभेद इनो को विरोध होनेसे परस्पर। अवस्थान असङ्गत इसमे तो इनो में से एकका वास्तवत्व होनेसे उभयात्मकत्व कभी सङ्गत होने सका नहीं ए सत्य है। किन्तु बाधविषयमें प्रमाणाभावप्रयुक्तसेभी इह सन्यथा अयुक्त है। उपलम्भ है सो बाधक प्रमाण, यहा सो नहीं क्यों कि समस्त वस्तुएं अनेक रसा त्मक उपलब्ध होते हैं अर्थात् कोइ वस्तुमें अनेक रस रहनेसेभी एक कालमें अनेक रसो की प्रतीति होती नहीं। आत्मामें ऐसे ही भेदाभेद रहनेसेभी उसको प्रतीति होती नहीं। इससे तो अनेक रस आत्मामें भेदाभेदवादीको मतमेंभी प्रसिद्ध होता है। कोइ कोइ जीव और अजीव दोनु होका अनर प्रकारसे वर्णन करते हैं। जैसा जीव१ आकाश२ धर्म३ अधर्म४ पुद्गलास्तिकाय५। एही पञ्चविध तत्त्व, कालत्रय सम्बन्धी। सुतरा इनो की जैसी स्थिति है, कहा जाय, यहीरूप अनेक प्रदेश विशिष्ट होनेके शरीरकी

प्रदेशत्वेन शरीरवत् कायव्यपदेशः। तत्र जीवा द्विविधा, संसारिणो मुक्ताश्च। भवाद्भवान्तप्राप्तिमन्तः, संसारिणः। ते च द्विविधाः, समनस्का अमनस्काश्च। तत्र संज्ञिनः समनस्का। शिक्षाक्रियालापग्रहणरूपा संज्ञा तद्विधुरास्त्वमनस्काः। ते चामनस्का द्विविधा त्रस स्थावरभेदात्। तत्र द्वीन्द्रियाद्य शङ्खगण्डोलकप्रभृतयश्चतुर्विधास्त्रयाः पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावरा। तत्र मार्गगतधूलिः पृथिवी इष्टकादि पृथिवीकाय, पृथिवीकायत्वेन येन गृहीता स पृथिवीकायक, पृथिवीं कायत्वेन यो

---

तरे इनो की काय है, उसमे जीव दो प्रकारके संसारी और मुक्त। जो जन्मके बाद पुनर्जन्म ग्रहण करे उनको संसारी कहते हैं। संसारीके दोय भेद। समनस्क और अमनस्क। उसमें जो संज्ञाविशिष्ट हैं उनो को समनस्क कहते हैं। यहाँ संज्ञाशब्द करके शिक्षा क्रिया आलाप का ग्रहण। जिनो को संज्ञा नहीं उनको अमनस्क कहते हैं। अमनस्क दो प्रकारको जैसे त्रस और स्थावर। उसमें जिनो के दो इन्द्रिय हैं वैसे शङ्खादि चतुर्विध प्राणीयो को त्रय कहते हैं। और पृथिवी१ अप्२ तेज३ वायु४ वनस्पति५ ए स्थावर करके परिगणित होते हैं उसमें धूलि प्रमुख पृथिवी और इष्टकादि पृथिवी काय जो पृथिवीको कायरूप ग्रहण किया है, उसको पृथिवकाय

ग्रहीष्यति स पृथिवीजीवः । एवमवादिष्वपि भेदचतुष्टयं योज्यम् । तत्र पृथिव्यादिकायत्वेन गृहीतवन्तो ग्रहीष्यन्तश्च स्थावरा गृह्यन्ते न पृथिव्यादिपृथिवीकायादयः तेषां जीवत्वात् । ते च स्थावराः स्पर्शनैकेन्द्रियाश्च भवान्तरप्राप्तिविधुरा मुक्ताः धर्माधर्माकाशास्तिकायास्ते एकत्वशालिनो निष्क्रियाश्च द्रव्यस्य देशान्तरप्राप्तिहेतुः । तत्र धर्माधर्मौ प्रसिद्धौ । आलोकेनावच्छिन्ने नभसि लोकाकाशपदवेदनीये सर्वत्रावस्थितिगतिस्थित्यु-

---

कहते हैं और जो पृथिवीको कायरूप ग्रहण करेगा उसको पृथिवी जीव कहते हैं । जलादि पदार्थभी इसी प्रकार भेद चतुष्टय युक्त होने सकते हैं जैसे जल१ जलकाय२ जलकायिक३ जलजीव४ । उसमें जो जो पृथिवीको कायरूप ग्रहण किया है वा करेगा वो स्थावररूप करके परिगृहीत होता है । पृथिव्यादि और पृथिवीकि कायादि जीव होनसे स्थावर समस्त भ्रमणरूप एकमात्र इन्द्रिय विशिष्ट । जिनो का पुनर्जन्म होय नहीं इसवास्ते इनो को मुक्त कहते हैं । धर्म और अधर्म और आकाश इनो के अस्तिकाय एकत्व सम्पन्न है । और क्रियाही नहैं और धर्मै द्रव्य जो है । सो देशसेती देशान्तर प्राप्तिका कारण है । उसमें धर्म अधर्मका पद प्रसिद्ध है । जो लोकमें आकाश शब्द करके परिज्ञात एव जो अलोक करके विच्छिन्न

यथहो धर्माधर्मयोरुपकारः अतएव धर्मास्तिकायः प्रवृत्त्यनुमेयः अधर्मास्तिकायः स्थित्यनुमेयः । अन्यवस्तुप्रदेशमध्येऽन्यस्य वस्तुनः प्रवेशोऽवगाहः तदाकाशकृत्यम् । स्पर्शरसवर्णवन्तः पुद्गलाः । ते च द्विविधाः अणवः स्कन्धाश्च । भोक्तुमशक्याः अणवः द्व्यणुकादयः स्कन्धाः । तत्र द्व्यणुकादिस्कन्धभेदादण्वादिरुत्पद्यते अण्वादिसंघातात् द्व्यणुकादिरुत्पद्यते क्वचिद्भेदसंघाताभ्यां स्कन्धोत्पत्तिः अतएव

---

होय नहीं सोई नभोमण्डलकी सर्व्वत्र अवस्थिति अर गति स्थिति एही तिन व्यापारका समाधान धर्माधर्मके उपकारका—धर्माधर्मसे ए उपकार लाभ होता है। यो उसीरूपसे सर्व्वत्र भवस्थानादि किया जाय इससेती प्रवृत्ति करके धर्मास्तिकाय अनुमेय हैं। अर्थात् जहा प्रवृत्ति है वही धर्म द्रव्य है ऐसी अनुमान होता है। अर जहा स्थिति है वहीं अधर्मास्तिकाय है ऐसा अनुमान होता है। अनयवस्के प्रदेशमें अनयवस्का प्रवेशता अवगाह कहते हैं। इसको आकाशका कृत्य कहते हैं। जिसमें स्पर्श रस अर वर्ण है उसको पुद्गल कहते हैं। सो दो प्रकार अणु१ अर स्कन्ध२। जिसमें जिनो का भोग होय नही उसको परमाणु कहते हैं। अर द्व्यणुकादिको को स्कन्ध कहते हैं। द्व्यणुकादि स्कन्ध भेद होनेसे परमाणुकी उत्पत्ति होती है। अर अणुआदि संघातसेती द्व्यणुकादि उत्पन्न होतेहैं। कही

पूरयन्ति गलन्तीति पुद्गला। कालस्यानेकप्रदेशत्वाभावेनास्तिकायत्वाभावेऽपि द्रव्यत्वमस्ति तल्लक्षणयोगात्। तदुक्तं गुणपर्य्यायवद्द्रव्यमिति। द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणा, यथा जीवस्य ज्ञानत्वादिसामान्यरूपा पुद्गलस्य रूपत्वादिसामान्यस्वभावा धर्म्माधर्म्माकाशकायाना यथासम्भव गतिस्थित्यवगाहनहेतुत्वादिसामान्यानि गुणा। तस्य द्रव्यस्योक्तरूपेण भवनमुत्पाद तद्भाव परिणाम पर्य्याय इति पर्य्याया यथा जीवस्य घटादिज्ञानसुखक्लेशादय पुद्गलस्य मृत्-

संघात और भेद दोनुके योगमें स्कन्धकी उत्पत्ति होती है। इसीवास्ते यो पूरण करे और गलित होय उस्का पुद्गल कहते हैं। कालके बहु प्रदेश विशिष्ट नही होनेसे उस्को अस्तिकायत्व नहीं होनेसेभी द्रव्य कहा जाता है। जिसवास्तेंकि उस्में द्रव्यका लक्षण पाया जाता है। सोई कहा है गुण पर्य्याय विशिष्टको द्रव्य कहतेहैं। उस्में यो द्रव्यके आश्रित और निर्गुण उस्को गुण कहते हैं। जैसे जीवका ज्ञानत्वादि सामान्यरूप गुण पुद्गलके रूपादि सामान्य स्वभाव गुण और धर्म्माधर्म्म आकाश इनका यथासम्भव गति स्थिति और अवगाह हेतुत्वादि सामान्य गुण उसी द्रव्यका उक्तरूप उत्पादन परिणामको पर्य्याय कहते हैं। जैसे जीवका घटादि ज्ञान सुख और

पिण्डघटादय धर्म्मादीना गत्यादिविशेषा पट्‌द्रव्याणीति प्रसिद्धि.। केचन सप्ततत्त्वानीति वर्णयन्ति तदाह जीवाजीवास्रवबन्धसम्वरनिर्जरमोक्षास्तत्त्वानीति, तत्र जीवाजीवौ निरूपितौ। आस्रवो निरूप्यते, औदयिकादिकायादिचलनद्वारेणात्मनश्चलनं योगपदवेदनीयमास्रव., यथा सलिलावगाहि द्वारं नद्यास्रवण कारणत्वादास्रव इति निगद्यते तथा योगप्रणाडिकया कर्म्मास्रवतीति स योगास्रव.। यथा आर्द्र वस्त्र समन्तादातानीत रेणुजातमुपादत्ते तथा कषायजलार्द्र आत्मा योगानीत कर्म्म सर्व्वप्रदेशै

---

घटादि पुद्‌गलका मृत्पिण्ड अर घटादि धर्म्मादिकी का गत्यादिविशेष इनको पर्याय कहते हैं इसीकारणसे षडविध द्रव्य प्रसिद्ध हैं कोई कोई सप्त तत्‌ कहते हैं। जैसे जीव अजीव आस्रव बन्ध सम्वर निर्जरा अर मोक्ष। इसमें जीव अजीवका स्वरूप पूर्व्व निरूपण किया है। अब आस्रवका स्वरूप व्याख्यान करते हैं। उदयिकादि काय वचन द्वारा आत्माकी जो चलन होय, सो योग शब्द करके ग्रहीत होता है, उसको आस्रव कहते हैं। जैसे जलके चलनसे नदीका चलन होय। उसी चलनको कारणवशसेती आस्रव कहते हैं। उसीतरे योग नाली करके कर्म्मका आना उसीको आस्रव कहते हैं। जैसा आर्द्र वस्त्र वायुके वशसेती, रेणु समूहको ग्रहण करै, उसीतरै कषायरूप

गृह्णाति । यथा वा निष्टप्ताय पिण्डे जले क्षिप्ते अम्भ समन्तात् गृह्णाति तथा कषायोष्णो जीवो योगानीतं कर्म्म समन्तादादत्ते । कषति हिनस्त्यात्मानं कुगति प्रापणादिति कषाय, क्रोधो मानो माया लोभश्च । स द्विविध शुभाशुभभेदात् । तत्राहिंसादि शुभ काययोग, सत्यमितहितभाषणादिशुभो वाग्योग । तद्देतदास्रवप्रभेदजात कायवाङ्मन कर्म्मयोग. स आस्रव, शुभ. पुण्यस्य अशुभ' पापस्येत्यादिना सूत्रसन्दर्भेण समरम्भसभाणि । अपरेत्वेवं मेनिरे आस्रवयति पुरुषं विषयेष्विन्द्रियप्रवृत्तिरास्रव. । इन्द्रिय-

---

जल करके आर्द्रीभूत आत्मा योग करके आनीत कर्म्मको सर्व्व प्रदेशसे ग्रहण करता है । अथवा जैसा उत्तप्त लोहपिण्ड जलमें डालनेसे सर्व्व प्रकार जलकणोंको ग्रहण करै ऐसेही कषाय करके उष्ण जीव योगानीत कर्म्मको सर्व्व प्रकार ग्रहण करै । कष अर्थात् कुगति प्राप्त करके आत्माको हीनभावापन्न करै इसीवास्ते इसको कषाय कहते है । क्रोध१ मान२ माया३ लोभ४ इनो के भेद है । दो प्रकारके कषाय होते है । जैसे शुभ और अशुभ । उसमें अहिंसादि शुभका योग एवं सत्यमित हितभाषणादि शुभ वाग्योग । अन्य अन्य इस्तरे कहते है आस्रव शब्द करके इन्द्रिय प्रभृति किसवास्ते कि पुरुषको विषयमें गाढासक्त करता है इसवास्ते इसका नाम आस्रव ।

द्वाराहि पौरुष जोतिर्व्विषयान् स्पर्शरूपादिज्ञान-रूपेण परिणमत इति । मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमाद-कषायवशाद् योगवशाच्चात्मा सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाहिना-मनन्तानन्तप्रदेशानां पुद्गलानां कर्म्मबन्धयोग्यानां-मादानमुपश्लेषण यत् करोति स बन्धः । तदुक्तं सकषायो जीवः कर्मभावयोग्यान् पुद्गलानादत्ते स बन्ध इति तत्र कषायग्रहणं सर्व्वबन्धहेतूपलक्षणार्थम् । बन्धहेतून् पपाठ वाचकाचार्य्यः मिथ्यादर्शनाविरति-प्रमादकषाया बन्धहेतव इति । मिथ्यादर्शनं द्विविधं मिथ्याकर्मोदयात् परोपदेशानपेक्ष तत्त्वा-श्रद्धानं नैसर्गिकमेकं, अपरं परोपदेशजम् । पृथिव्या-

---

तथाहि पौरुष जोति इन्द्रिय द्वारा विषय सकल स्पर्श करके रूपादि ज्ञानमें परिणत होता है । आत्मा मिथ्यादर्शन अविरति प्रमाद और कषायवश एवं योगवश अनन्तानन्त प्रदेश-विशिष्ट कर्म्मबन्धका उपयोगी पुद्गलों का जो परिग्रह जो परिहार करे उसको बन्ध कहते हैं । कोई कहता है, जीव कषायवश कर्म्मभाव योग्य पुद्गलों को जो परिग्रह करे उसको को बन्ध कहते हैं । यहां कषायशब्दसे ही बन्धका हेतुभूत समझना । वाचकाचार्य्य ऐसे ही बन्ध निर्द्देश किया है । जैसे मिथ्यात्व१ अविरति२ प्रमाद३ और कषाय४ एह बन्धके हेतु हैं । मिथ्या-दर्शन द्विविध । प्रथम मिथ्याकर्म्मके उदयवश परके उपदेश बिगर

दिपट्कोपादानक षडिन्द्रियासंयमनञ्च अविरति । पञ्चसमितिगुप्तिष्वनुत्साह प्रमाद । कषाय क्रोधादि तत्र कषायान्ता स्थित्यनुभावबन्धहेतव प्रकृतिप्रदेशबन्धहेतुर्योग इति विभागः । बन्धश्चतुर्विध इत्युक्त प्रकृतिस्थित्यनुभावप्रदेशास्तद्विधय इति । यथा निम्बगुडादेस्तिक्तमधुरत्वादिस्वभाव एवमावरणीयस्य ज्ञानदर्शनावरणत्वमादित्यप्रभोच्छेदकाम्भोधरवत् प्रदीपप्रभातिरोधायककुम्भवच्च सदसद्वेदनीयस्य सुखदु खोत्पादकत्वमसिधारामधुलेहनवद् दर्शनमोहनीयस्य

---

समुद्र तत्त्वाश्रद्धान सो नैसर्गिक। द्वितीय परोपदेशजनित, पृथिवी प्रभृतिका छय उपदेशात्मक छय इन्द्रियका सयमन नहीं करणा उसको अविरति है। पांचविध समिति गुप्तिमें यो उत्साहका विरह सो प्रमाद। कषाय क्रोधादि पूर्व्वे कहा है। उसमें मिथ्या दर्शनसे कषाय पर्य्यन्त चार स्थिति और अनुभावबन्धका कारण योगसेती प्रकृति प्रदेश बन्ध होता है। बन्ध चतुर्व्विध जैसे प्रकृति स्थिति अनुभाग और प्रदेश। जैसे निम्बगुडादिको का तिक्त मधुर स्वभाव है, वैसेही आवरणीय वस्तुका ज्ञान दर्शन आवरण एही स्वभाव है। जैसे मेघ सूर्य्यप्रभाका आवरणका एव कुम्भ दीपप्रभाका उच्छेदक। फेर सदसद्वेदनीय वस्तुका स्वभाव सुखदु खका उत्पन्न करणा, जैसे असिधारामें मधु देनेसे

तत्त्वार्थाश्रद्धानकारित्वं दुर्जनसङ्गवच्चारित्रे मोहनीयस्यासंयमहेतुत्वं मद्यमदवदायुषो देहबन्धकर्तृत्वं जलवन्नाम्नो विचित्रनामकारित्वं चित्रकवद्गोत्रस्योच्चनीचकारित्वं कुम्भकारवद्दानादीनां विघ्ननिदानत्वमन्तरायस्य स्वभावः कोषाध्यक्षवत्। सोऽयं प्रकृतिबन्धोऽष्टविधः, द्रव्यकर्म्मावान्तरभेदमूलप्रकृतिवेदनीय । तथावोचदुमास्वामिवाचकाचार्य्य, आद्योज्ञानदर्शनावरणवेदनीयायुर्नामगोत्रान्तराया इति तद्भेदश्च समगच्छात् पञ्चनवाष्टाविंशति-

---

सेवन करणेसे सुखदु ख दोनुंही उत्पन्न होते हैं । दर्शन मोहनीय अर्थात् जिस्कु देखनेसे मोह जसे वैसा वस्तुका स्वभाव तत्वका अश्रद्धान, जैसे दुर्ज्जनके सङ्गसे तत्वका अश्रद्धान होय । चरित्र मोहनीय वस्तुका स्वभाव असंयम समुत्पादन करणा जैसे मद्य असंयमका कारण देहमें बन्धकरण आयुकर्मका स्वभाव चित्रप्रकारकी परे विचित्र नाम धारण करणा नामका स्वभाव गोत्रका स्वभाव कुम्भकारकी परे उच्च नीच कारित्व अन्तरायका स्वभाव कोषाध्यक्षका परे दानादिकमें विघ्नकारित्व । एही प्रकृतिबन्ध अष्टविध । इस्का द्रव्य कर्म अवान्तरभेद मूलप्रकृति द्वारा परिज्ञात होते हे । सोही उमास्वामी वाचकाचार्य्य कहते हैं । ज्ञान दर्शन आवरण वेदनीय मोहनीय आयु नाम गोत्र अन्तराय एही प्रकृति बन्ध । इसके उत्तरभेद ५,९,

चतुर्द्विचत्वारिंशद् द्विपञ्चदशभेदा यथाक्रममिति एतच्च सर्व्वं विद्यानन्दादिभिर्विवृतमिति विस्तरभयान्न प्रस्तूयते ॥ ३ ॥

यथा अजागोमहिष्यादिक्षीराणामेतावन्तमनेहसं माधुर्य्यभावादप्रच्युतिः स्थितिः तथा ज्ञानावरणादीनां मूलप्रकृतीनामादितस्तिसृणामन्तरायस्य च त्रिंशत्सागरोपमकोटिकोट्य परास्थितिरित्याद्युक्तकालदर्शनवत् स्वीयस्वभावादप्रच्युतिः स्थितिः ।

यथा अजागोमहिष्यादिक्षीराणां तीव्रमन्दादिभावेन स्वकार्य्यकरणे सामर्थ्यविशेषोऽनुभाव तथा पुद्गलानां स्वकार्य्यकरणे सामर्थ्यविशेषोऽनुभावः प्रदेशबन्ध ।

---

२८, ४, ४२, २, १५, परिकल्पित होते हैं। पूज्य विद्यानन्दादि प्रभृति आचार्योंने विवरण किया है विस्तारके भयसे यहां लिखा नहीं ॥ ३ ॥

जैसा अजा गो महिषी प्रभृति क्षीरका तीव्र मन्दादिभाव करके अपने कार्य्य करनेमें सामर्थ्य विशेषका अनुभाव कहते हैं, उसीतरें कर्म्म पुद्गलों का अपने कार्य्य करनेमें सामर्थ्य विशेषका नाम अनुभाव। कर्म्मभाव प्राप्त अनन्तानन्त प्रदेश विशिष्ट पुद्गल स्कन्धोंका आत्मप्रदेशमें अनुप्रवेशको प्रदेशबन्ध कहा है ।

आस्रव निरोधः सम्वरः येनात्मनि प्रविशत् कर्म प्रतिषिध्यते स गुप्तिसमित्यादिः सम्वरः। संसारकारणात् योगादात्मनो गोपनं गुप्तिः। सा त्रिविधा, कायवाङ्मनोनिग्रहभेदात्। प्राणिपीडापरिहारेण सम्यगयनं समितिः। सा ईर्याभाषादिभेदात् पञ्चधा। प्रपञ्चितञ्च हेमचन्द्राचार्य्यैः — लोकातिवाहिते मार्गे चुम्बिते भास्वदंशुभिः। जन्तुरक्षार्थमालोक्य गतिरीर्या मता सताम्॥ आवश्य-

---

आस्रव निरोधकु सम्वर कहते हैं। जिस्से द्वारा आत्मामें प्रवेश करते हुए कर्म प्रतिषिद्ध होय उस्को गुप्ति कहते हैं। समित्यादि सम्वर संसारका हेतुभूत योगसेती आत्माको गोपन करणा उस्को गुप्ति कहता हैं। गुप्ति तिन प्रकार। जैसे मनोनिग्रह१ वाग्निग्रह२ कायनिग्रह३। प्राणिगणका पिड़ा कोभी उपस्थित न होय, उस्को अनुरूप अयन करणेका नाम अर्थात सदरुप करणेका नाम समिति। एही समिति ईर्याभाषादि भेदसे ५ प्रकार। ईर्यासमिति१ भाषासमिति२ एषणासमिति३ आदानसमिति४ उत्सर्गसमिति५। भगवान हेमचन्द्राचार्य्य इनोका विस्तारसे अर्थ वर्णन किया है। जैसे सूर्य्यके किरण करके प्रकाशित लोकोंके यातायात मार्गमें प्राणिगणकी रक्षार्थ विशेषरूप दर्शन करके गमन करणेका नाम ईर्या समिति। जिसमें समस्त लोकोंका मन प्रसन्न

तागत सर्व्वजनीनं मितभाषणम्। प्रियावाचं यमाना सा भाषासमितिरुच्यते॥ द्विचत्वारिंशता भिक्षा दोषै नित्यमदूषितम्। मुनिर्यदन्नमादत्ते सैषणा समितिर्म्मता॥ आसनादीनि सम्वीक्ष्य प्रतिलेख्य च यत्नत। गृह्णीयान्निक्षिपेद्वायेत् सादानसमिति स्मृता। कफमूत्रमलप्रायैर्निर्जन्तुजगतीतले। यत्नाद्यदुत्सृजेत् साधु सोत्सर्गसमितिर्भवेत्॥ अतएवास्रव स्रोतसोद्वार सम्वृणोतीति सम्वर इति निराहु। तदुक्तमभियुक्तै—आस्रवोभवहेतु स्यात्

---

होय उसरूप मित वाक्य प्रयोग करणेका नाम भाषा समिति। जिनो ने वचनको संयमन किया है उनको भाषा समिति प्रिय है। जो ४२ दोष करके रहित भिक्षा ग्रहण करणा जिस्मे कोइ दोषका संस्पर्श नहीं उस आहार ग्रहण करणेका नाम एषणा समिति। आसनादि समुदाय सम्यग् दर्शन कर यत्नपूर्व्वक प्रतिलेखन करके निक्षेप करणा ग्रहण करणा उस्का नाम आदान समिति। कफमूत्रमलादि निर्जीव भूमिमें परिस्थापन करणा उस्को उत्सर्ग समिति कहते हैं। इसी कारणसे आस्रव स्रोत अर्थात् उत्पत्तिको संवरण करै वोलके उस्को संवर कहते हैं। एही निरूपण किया है। पण्डितो-नेभी यही कहा है—जैसे आस्रव भवोत्पत्तिका कारण एव सम्वर मोक्षका कारण। भगवान अर्हंतदेवभी वैसेही

सम्वरो मोक्षकारणम्। तृतीयमार्हती मुष्टिरन्यदस्या. प्रपञ्चनम्। अर्जितस्य कर्म्मणस्तपःप्रभृतिभिर्निर्जरणं निर्जराख्यं तत्तु चिरकालप्रवृत्तकषायकलापं पुण्यं सुखदुःखे च देहेन जरयति नाशयति केशोल्लुञ्चनादिकं तप उच्यते। सा निर्जरा द्विविधा यथा कालौपक्रमिकभेदात् तत्र प्रथमा यस्मिन् काले यत् कर्म्मफलप्रदत्वेनाभिमतं तस्मिन्नेव काले फलदानाद्भवति निर्जरा कामाद्विपाकजेति च जेगीयते। यत् कर्म्म तपोबलात् स्वकामनयोदयावलिं प्रविश्य प्रपद्यते तत् कर्म्म निर्जरा। यदाह—संसारबीजभूतानां कर्म्मणां जरणादिह। निर्जरा सम्मता द्वेधा सकामा कामनिर्जरा॥ स्मृता सकामा यमिनामकामा त्वन्यदेहिनामिति। मिथ्यादर्शनादीनां

---

मीमांसा किया है अनन्तरभी इसका प्रपञ्चन किया है। अर्जित अर्थात् सञ्चित कर्म्म तपस्या करके निर्जरा अर्थात् कर्म्मका क्षय करणा उसको निर्जरा तत्त्व कहते हैं सोइ कहा है। संसारके बीजभूत समस्तकर्म्मका जरण अर्थात् क्षय करणा उसको निर्जरा कहते हैं, सो दोय प्रकार—सकाम और अकाम। उसमें साधुको सकाम और प्राणियोंके अकाम निर्जरा। कहा हुए मिथ्यादर्शनादि जो समस्त बन्धके कारण परिगणित उनको दूर

बन्धहेतूनां निरोधः अभिनवकर्म्माभावात् निर्जराहेतुसन्निधानेनार्जितस्य कर्म्मणो निरसनादात्यन्तिककर्म्ममोक्षणं मोक्ष इति। बन्धहेतुभवहेतुनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्म्मविप्रमोक्षणं मोक्ष इति। तदनन्तरमूर्द्ध्वं गच्छत्यालोकान्तात् यथा हस्तदण्डादिभ्रमिप्रेरितं कुलालचक्रमुपरतेऽपि तस्मिन् तद्वलादेवा संस्कारक्षयं भ्रमति तथा भवस्थेनात्मना अपवर्गप्राप्तये बहुशो यत् कृतं प्रणिधानं मुक्तस्य तदभावेऽपि पूर्व्वसंस्कारादालोकान्तं गमनमुपपद्यते, यथा वा

---

करणा उसको मोक्ष कहते हैं। अथवा अभिनव कर्म्मका अभाव एवं निर्जरा हेतुके सन्निधान द्वारा अर्जित कर्म्मका निरोधन एही उभय उपाय करके आत्यन्तिक कर्म्म मोक्षण अर्थात् परिहार होय उसको मोक्ष कहते हैं। अथवा बन्धका कारण एवं उत्पत्तिका हेतु एही द्विविध निर्जराके सहायसे तो समुदाय कर्म्म दूर करणा सो मोक्ष। इस मोक्षके पर लोकान्तमे उर्द्ध्वगमन होता है। जैसे हस्त दण्डादि द्वारा भ्रमण करके चलानेसे कुम्भकारके चक्रकी पर उसकी निवृत्तिमेंभी उसके प्रभावसे जहान्तक वेगका क्षय न होय तहान्तक भ्रमण करता है, उसी प्रकार भवस्थ आत्मा द्वारा अपवर्ग प्राप्तिकेवास्ते जो प्रणिधान समाहित होय मुक्तावस्थामें उसका अभाव होनेमेंभी पूर्व्व संस्कार बलसे तो अलोक पर्य्यन्त

मृत्तिकाक्रान्तलेपमलाबुद्रव्य जलेऽध पतति पुनरपेतमृत्तिकाबन्धमूर्द्ध्वं गच्छति तथा कर्म्मरहित आत्मा असङ्गत्वादूर्द्ध्वं गच्छति बन्धच्छेदादेरण्डबीजवच्चोर्द्ध्वगतिस्वभावाच्चाग्निशिखावत् । अन्योन्य प्रदेशानुप्रवेशे सत्यविभागेनावस्थान बन्ध, परस्परप्राप्तिमात्रं सङ्ग'। तदुक्त, पूर्व्वप्रयोगादसङ्गत्वाद् बन्धच्छेदात्तथा गतिपरिणामाच्चाविरुद्ध कुलालचक्रवद्व्यपगतलेपालाबुवदेरण्डबीजवदग्निशिखावच्चेति ।

अतएव पठन्ति—गत्वा गत्वा निवर्त्तन्ते चन्द्रसूर्य्यादयो ग्रहा । अद्यापि न निवर्त्तन्ते त्वालोका-

---

गमन करे। अथवा जैसे मृत्तिकालिप्त अलाबु जलमें डालनेसे निमग्न होय एव मृत्तिकालेप दूर होनेसे फेर ऊपर आता है, उसीतरे कर्म्मरहित आत्मा ऊर्द्ध गमन करता है। एरण्डबीज और अग्निशिखा इनो का जैसा ऊर्द्ध गमन स्वभाव इस्तरि ऊर्द्ध गमन स्वभाव इसीवास्ते बन्धका उच्छेद होनेसे आत्माकी ऊर्द्ध गति होय। परस्पर प्रदेश अनुप्रवेश होनेसे जो अविभागक्रमसे तो अवस्थान सो बन्ध। और परस्पर प्राप्तिमात्रको सङ्ग कहते है। इसीवास्ते कहाइ—पूर्व्व प्रयोग, सङ्गहीनता, बन्धच्छेद, गतिपरिणाम, एही समस्त उपाय करके कुम्भकार चक्रकी परै मृत्तिकालेप रहित अलाबुकी पर एरण्ड बीजकी परै ऊर्द्ध गमन करता है। इसीवास्ते निर्द्दश किया है। चन्द्र

काशमागता इति। अन्ये तु गतसमस्तक्लेशतद्वासनस्यानावरणज्ञानस्य सुखैकतानस्यात्मन उपरिदेशावस्थान मुक्तिरित्यास्थिषत। एवमुक्तानि सुखदुःखसाधनाभ्यां पुण्यपापाभ्यां सहितानि नव पदार्थान् केचन अङ्गीचक्रुः। तदुक्तं सिद्धान्ते। जीवाजीवौ पुण्यपापयुतावास्रवः सम्वरो निर्जरश्च बन्धो मोक्षश्च नव तत्त्वानीति सङ्ग्रहे प्रहृत्ता वयमुपरताः स्मः। अत्र सर्व्वत्र सप्तभङ्गिमयाख्यं न्यायमवतारयन्ति जैना, स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादस्ति नास्ति च,

---

सूर्यादि ग्रहण बार बार गमन करके निवृत्त होते हैं किन्तु जो लोकान्त गमन किया है वो अभीत कभी पावे नहीं आते हैं जरभी आचार्योंने कहाइ समस्त क्लेशहीन समुदाय वासना विहीन अर अनावरण ज्ञान सम्पन्न होनेसे आत्मा सुख मातको प्राप्तिमेंही मुक्तभावापन्न होके उपरिदेशमें अवस्थान करे, उसको मुक्ति कहते हैं। इसीतरे कोइ कोइ महात्मा सुखदुःखका साधनरूप पुण्य पाप सहित नव पदार्थ स्वीकार करते हैं सिद्धान्तरत्नमें सो कहा है। जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, सम्वर, निर्जरा, बन्ध अर मोक्ष। एइ नव तत्त्व कहे हैं। इस संग्रहमें प्रहृत्त भये हैं अब यहांसे निवृत्त भए हैं। स्याद्वादी सब सप्तभङ्गीरूप न्यायका अवतारण करते हैं। जैसे स्यादस्ति अर्थात् कोइरूप करके हैं, स्यान्नास्ति अर्थात् कोइ रूपसे नहीं है, स्यादस्ति नास्ति

स्यादवक्तव्यः, स्यादस्ति चावक्तव्यः, स्यान्नास्ति चावक्तव्यः, स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्यइति ॥

तत् सर्व्वमनन्तवीर्य्यः प्रत्यपीपदत्—तद्विधानविवक्षायां स्यादस्तीति गतिर्भवेत् । स्यान्नास्तीति प्रयोगः स्यात्तन्निषेधे विवक्षिते । क्रमेणोभयवाञ्छाया प्रयोगसमुदायभाक् । युगपत्तद्विवक्षायां स्यादवाच्यमशक्तितः । आद्यवाच्याविवक्षायां पञ्चमोभङ्ग इष्यते । अन्त्यावाच्यविवक्षाया षष्ठभङ्ग-

---

अर्थात् कोई रूपसे है जर नहीं, स्यादवक्तव्य अर्थात् कोई रूपसे है वा नहीं ऐसा कहा जाय नहीं, स्यादस्ति अवक्तव्य अर्थात् कोईरूपसे अस्ति ऐसा अवक्तव्य है, स्यान्नास्ति चावक्तव्य अर्थात् कोई रूपसे नहीं ऐसाभी अवक्तव्य है। स्यादस्ति नास्ति युगपदवक्तव्य अर्थात् कोई प्रकारसे अस्ति नास्ति ऐसा एककालमें अवक्तव्य है। यही सप्तभङ्गीरूप न्याय भगवान अनन्त वीर्य इसप्रकारसे इनो का प्रतिपादन किया है। जहा विधिका विषय है वहांहीं प्रथम भङ्गका अवतरण होता है। जहा निषेधका विवक्षा है वहा द्वितीय भङ्गका अवकाश है। यथाक्रमसेती वासनाकी एककाल विवक्षा होनेसे समुदित तृतीय भङ्ग होता है। जर अर्था अस्ति नास्ति इनो का प्रयोग नहीं वहा चतुर्थ भङ्ग जानना। प्रथम न्यायकी अवाच्यविवक्षा होनेसे पञ्चम न्यायका प्रयोग होता है। अन्तकी अवाच्य विवक्षा होनेसे षष्ठ न्यायका

समुद्भव। समुच्चयेन युक्तश्च सप्तमोभङ्ग उच्यते इति। स्याच्छब्द खल्वय निपात तिडन्त प्रतिरूपकोऽनेकान्तद्योतक। यथोक्त वाक्येष्वने कान्तद्योतिगम्य प्रतिविशेषणम्। स्यान्निपातोऽर्थ योगित्वात्तिडन्तप्रतिरूपक इति॥ यदि पुनरे-कान्तद्योतक स्यात् शब्दोऽय स्यात्तदा स्यादस्तीति वाक्ये स्यात्पदमनर्थक स्यात् अनेकान्तद्योतकत्वे तु स्यादस्ति कथञ्चिदस्तीति स्यात् पदात् कथञ्चि-दिति अयमर्थो लभ्यत इति नानर्थक्यम्। तदाह—स्याद्वाद सर्व्वथैकान्तत्यागात् किंवृत्त चिद्विधे।

---

सप्तभङ्ग होता है। जर एकवारगी समुदयके अवाच्यकी विवक्षा होनेसे सप्तम भङ्ग कथित होता है। यहा स्यात्छब्द करके अनेकान्तद्योतक तिडन्त प्रतिरूपक अव्यय ग्रहीत होता है। इसमें प्रमाण वाक्यके मध्यमें प्रयोजित अव्यय शब्द प्रति विशेषणसे अतीव विशद रूपसेती अनेकान्तद्योतक होनेसे अथयोगवयसेती तिडन्त प्रतिरूप होता है। जो बोलो कहा हुवा जो स्यात्छब्द उसमें एकान्तभाव द्योतकता होय तो स्यादस्ति इस वाक्यमें जो स्यात्छब्द है वो अनर्थक होय। किन्तु अनेकान्तका द्योतक होनेसे स्यादस्ति इसपदस कोइ प्रकारकेहै ऐसी प्रतीत होता है। फलमें स्यात् शब्दमें कथञ्चित् ऐसाही अर्थलाभ होता है। इसकी अनर्थकता नहीं। प्रमाण जैसे—जहा सर्व्व प्रकार

सप्तभङ्गिनयापेक्षो हेयादेयविशेषकृदिति। यदि वस्तुन्येकान्तत सर्व्वथा सर्व्वदा सर्व्वत्र सर्व्वात्मनास्तीति न उपादित्साजिहासाभ्या क्वचित् कदा केनचित् प्रवर्त्तेत निवर्त्तेत वा प्राप्तप्रापणीयत्वहेयहानानुपपत्तेश्च अनेकान्तपक्षे तु कथञ्चित् क्वचित केनचित् सत्त्वं न हानोपादाने प्रेक्षावतामुपपद्यते। किञ्च वस्तुन सत्त्व स्वभाव असत्त्व वेत्यादि प्रष्टव्य न तावदस्तित्व वस्तुन स्वभाव इति समस्ति घटोऽस्तीत्यनयो पर्य्यायतया युगपत्प्रयोगायोगात्

कारके एकान्तका त्याग होय। वहाही स्याद्वाद प्रयोजित होता है। यही स्याद्वाद सप्तभंगीरूप न्यायके सापेक्ष है। एव हेय उर उपादेय दोनु का पार्थक्यविधान करता है। जो वस्तु एकान्तही होय तो सर्वथा सर्वदा सर्वत्र सर्वावयवसे परिग्रह उर परिहार इन दोनोंका इच्छाक्रमसेतो क्वचित् कदाचित् किसका किया भया उर प्रवर्तित निवर्तित होने सके नही किसवास्ते कि प्राप्तप्रापणीयत्व हेय हान इन सर्वोंका अनुपपत्ति होय। अनेकांत पक्ष मे कथचित् क्वचित् किस्का किया परिग्रह उर प्रत्याख्यान उपपादित होनेका सभावना होता है। फेर जिज्ञासा किया जाय। जो सत्त्व किया असत्त्व वस्तुका स्वभाव? इसके उत्तर कहने सके। अस्तित्व वस्तुका स्वभाव नही किस वास्ते कि है उर घट है—एही दोनु एकपर्यायविशिष्ट एककाल मे इनका प्रयोग होने सके

नास्तीति प्रयोगविरोधाच्च एवमन्यत्रापि योज्यम् । यथोक्तं । घटोऽस्तीति न वक्तव्य सन्नेवहि यतो घट । नास्तीत्यपि न वक्तव्य विरोधात सदसत्तयोरित्यादि ॥ तस्मादित्थ वक्तव्य मदसत मदसद्‌निर्व्वचनीयवादभेदेन प्रतिवादिनश्चतुर्व्विधा पुनरप्यनिर्वचनीयमतेनामिश्रितानि सदसदादिमतानोति चतुर्विधा तान प्रति किं वस्त्वस्तीत्यादि पर्य्यनुयोगे कथञ्चिदस्तीत्यादि प्रतिवचनसम्भवेन ते वादिन सर्व्वे निर्विण्णा सन्त तुष्णीमासत इति सम्पूर्णार्थविनिश्चायिन स्याद्वादमङ्गीकुर्वतस्तत्र तत्र विजय इति सर्वमुपपन्नम् ॥

---

नहीं विशेषत नास्ति अर्थात् नाहीं एहरूप प्रयोगके साथ विरोध घटता है । एहसा प्रकार उर अगेभी योजना करणे सकै । इसी वास्ते कहा है घट है ऐसा कहने नहीं सको, कारण घट सत् स्वरूप । उर नहींभी कहने सको नहीं किसवास्ते नहीं कहनेसे सत्व उर असत्त्वका विरोध घटनेसे । अर्थात् एक वस्तु है उर फेर नहो कभी ऐसा होने सकता नही । इस कारणसे कहने सकते हैं सत् उर असत् सदसत् अनिर्वचनीय मतभेदसे प्रतिवादी चतुर्विध । फेरभी अनिर्वचनीयमत छोड़नेसे सत् असत् उर सदसत् तिन प्रकारके होतेहैं । इनोंको जिज्ञासा किया जाय वस्तु है क्या ? तो कथंचित् है इत्यादि प्रतिवचन

यदवोचदाचार्य्य स्याद्वादमञ्जर्य्यां। अनेकान्तात्मक वस्तु गोचर. सर्वसम्विदाम्। एकदेशविशिष्टोऽर्थो न यस्य विषयो मत.॥ न्यायानामेकनिष्ठाना प्रवृत्तौ श्रुतवर्त्मनि। सम्पूर्णार्थविनिश्चायि स्याद्वस्तु श्रुतमुच्यत इति॥

अन्योन्यपक्षप्रतिपक्षभावाद्यथा परे मत्सरिण प्रवादा। नयानशेषान् विशेषमिच्छन्न पक्षपातीसमयस्तथार्हत इति॥

जिनदत्तसूरिणा जैन मतमित्यमुक्तम्। वलभोगोप-

---

संभावनामे वो सब निर्विरा होके चुप बारके रहते है। स्याद्वाद स्वीकार करणे से अर्थ सपूर्णरूप करके अर्थ विनिर्णीत उर तत्रि वधन सर्वत्र जयलाभ होता है। ए सवतोभावसे उपपन्न है। आचार्य्य स्याद्वादमञ्जरीमे कहते है। जो वस्तु अनेकान्तात्मक वही सवज्ञके विषयभूत है। जो एकदेश विशिष्ट वो किसीकिभी विषयभूत नही। एकदेशविशिष्टन्यायसमस्त प्रवृत्त होनेसे जिस्करके सपूर्ण अर्थ विनिश्चित होय, उस्को ही श्रुतमार्गमे श्रुत कहते है। परस्परका पक्ष उर प्रतिपक्षभाव उपस्थित होनसे उर वादो जैसा मात्सर्य्य प्रकाश करतेहै, भगवान् अर्हत् देव उस्तरे जब करते नही, ए भगवान् अपक्षपाती। मत सकलका परस्पर विरोध दूर करनके वास्तेही इनों का उद्यम है॥

भोगानामुभयोर्दानलाभयो । अन्तरायस्तथा निद्रा भीरज्ञान जुगुप्सितम्॥ हिंसारत्यरतो -रागद्वेषो रतिस्मर । शोको मिथ्यात्वमेतेऽष्टादश दोषा नयस्य स ॥ जिनो देवो गुरु सम्यक् तत्त्वज्ञानोपदेशक । ज्ञानदर्शनचारित्राण्यपवर्गस्य वर्त्तिनि॥ स्याद्वादस्य प्रमाणे द्वे प्रत्यक्षमनुमापि च। नित्यानित्यात्मक सर्वं नव तत्त्वानि सप्त वा॥ जीवाजीवौ पुण्यपापे चास्रव सम्वरोऽपि च। बन्धोनिर्जरण मुक्तिरेषा व्याख्याधुनोच्यते॥ चेतनालक्षणो जीव स्यादजीव-स्तदन्यक । सत्कर्मपुद्गला पुण्य पाप तस्य विप

---

श्रीजिनदत्तसूरि महाराजने जैन मत इस प्रकारसे व्याख्यान किया है जैसे बल, भोग, उपभोग, एव दान, उर लाभ इन समस्तका अन्तरायभूत निद्रा, भय, अज्ञान उर जुगुप्सा, हिंसा, रति, अरति, राग, द्वेष, रतिस्मर शोक, मिथ्याज्ञान इन्हो, अष्टादश दोष रहित भगवान् अर्हत् देव। गुरु जो है सो सम्यक् तत्त्वज्ञानोपदेष्टा। ज्ञानदर्शन उर चारित्रही मोक्षका प्रकाशक। स्याद्वादके दोय प्रमाण—प्रत्यक्ष, उर अनुमान। सर्ववस्तुही नित्यानित्यात्मक है। तत्त्व नवभी है अथवा सातभी है। जैसे इनो के नाम—जीव१ अजीव२ पुण्य३ पाप४ आस्रव५ सवर६ बध७ निजरा८ उर मोक्ष९। अब इनो का व्याख्यान करते है। जीवका स्वरूप चेतना। उर अजीव उससे विपरीतधर्मसम्पन्न है। सत्कर्म पुद्गलो को पुण्य काहत हैं। पाप

र्थ्यय ॥ आस्रव कर्म्मणा वन्धो निर्ज्जरस्तद्वियोजनम् । अष्टकर्म्मक्षयान्मोक्षोऽथान्तर्भावश्च कैश्चन ॥ पुण्यस्य सस्रवं पापस्यास्रवं क्रियते पुन । लब्धानन्तचतुष्कस्य लोका गूढस्य चात्मन ॥ क्षीणाष्टकर्म्मणो मुक्तिर्निर्व्यावृत्तिर्जिनादिता । सरजोहरणा भैक्षभुजो लुञ्चितमूर्द्धजा ॥ श्वेताम्बरा क्षमाशोला नि सङ्गा जैनसाधव । लुञ्चिता पिच्छिकाहस्ता पाणिपात्रा दिगम्बरा । ऊर्द्धाशिनो गृहे दातुर्द्वितीया स्युर्जिनर्षय ॥

---

उससे विपरीत । आस्रव शब्द करके कर्म्मबंधको हेतु । सवर याते कर्म्मको रोध करना कर्म्मपुद्गलो का परस्पर आत्मप्रदेशो मे बधन करनाउस्को बन्ध कहते हैं । तपस्यादिद्वारा कर्मको निर्जरणा उस्को निर्जरो कहते हैं । अष्टकर्मो का क्षय करणा उस्को मोक्ष कहते है । उर कोइ कोइ आचार्य इस्को अन्तर्भाव कहत हैं । आत्मा अनन्तचतुष्क लाभ करके अष्टविध कर्मो का क्षययोगसे युक्त होता है जिनराजके मतमे इस्को निर्व्वाण कहते है । ऐसा निर्व्वाण होनेसे फेर कभीउस्को ससार होगा नही । जैनसाधुगण भिक्षाद्वारा निर्वाह करते है अर्थात् शरीर धारण करतेहै, मस्तक लुञ्चन करते है, श्वेत वसन उर क्षमाशील होतेहै । सर्व्ववस्तु से निर्लिप्त रहै । उर द्वितीय प्रकारमे जो साधु है उनो को जिनर्षि कहते है । एसबभी मुडित मस्तक उर पिच्छिकाहस्त । हात निजके पात्रहै उर नग्नहै, एसब गृहस्थके घरमे दाताके हस्तद्वारा ऊर्द्धभोजन करते हैं ।

एकस्मिन्नसम्भवादित्यधिकरणे रामानुजचरणैश्चैवमाचख्ते।

ते किल मन्यन्ते जीवाजीवात्मकं जगदेतन्निरीश्वरं, तच्च षड्द्रव्यात्मकं, तानि च द्रव्याणि जीवधर्माधर्मपुद्गलकालाकाशाख्यानि, तत्र जीवा बद्धा योगसिद्धा मुक्ताश्चेति त्रिविधाः। धर्मो नाम गतिमतां गतिहेतुभूतो द्रव्यविशेषो जगद्व्यापी, अधर्मश्च स्थितिहेतुभूतो व्यापी, पुद्गलो नाम वर्णगन्धरसस्पर्शवद्द्रव्यं, तच्च द्विविधं—परमाणुरूपं तत्सङ्घातरूपञ्च पवनज्वलनसलिलधरणीतनुभवनादिकं, कालस्त्वभूदस्ति भविष्यतीति व्यवहारहेतुरणुरूपो द्रव्यविशेषः, आकाशोऽप्येकोऽनन्तप्रदेशश्च। तेषु चाणुव्यतिरिक्तानि द्रव्याणि पञ्चास्तिकाया इति च सङ्गृह्णन्ति, जीवास्तिकायो धर्मास्तिकायोऽधर्मास्तिकायः पुद्गलास्तिकायः आकाशास्तिकाय इति। अनेकदेशवर्त्तिनि द्रव्येऽस्तिकायशब्दः प्रयुज्यते। जीवानां मोक्षोपयोगिनामपरमपि सङ्ग्रहं कुर्वन्ति। "जीवाजीवास्रवबन्धनिर्जरसंवरमोक्षाः" इति मोक्षसङ्ग्रहणे मोक्षोपायश्च गृहीतः। स च सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्ररूपः, तत्र जीवस्य ज्ञानदर्शनसुखवीर्य्यगुणः, धजा-

यच्च जीवभोग्यवस्तुजातम् आस्रवस्तदुपभोगोपकरणभूतमिन्द्रियादिकं (१), बन्धश्चाष्टविधः घातिकर्मचतुष्टयमघातिकर्मचतुष्टयञ्चेति। तत्राद्यं जीवगुणानां स्वाभाविकानां ज्ञानदर्शनवीर्य्यसुखानां प्रतिघातकारणं, अपरं शरीरसंस्थानतदभिमानतत्स्थितितत्प्रयुक्तसुखदुःखोपेक्षाहेतुभूतं निर्जरं मोक्षसाधनमर्हदुपदेशवशात् तपः, सम्वरो (२) ज्ञानेन्द्रियनिरोधिसमाधिरूपः, मोक्षस्तु निवृत्तरागादिक्लेशस्य स्वाभाविकात्मस्वरूपाविर्भावः पृथिव्यादिहेतुभूताश्च नवो वैशेषिकादीनामिव न चतुर्विधा अपि त्वेकस्वभावा। पृथिव्यादिभेदस्तु परिणामकृतः सर्वं च वस्तुजातं सत्त्वासत्त्वनित्यत्वानित्यत्वभिन्नत्वाभिन्नत्वादिभिरनैकान्तिकमिच्छन्ति स्यादस्तीत्यादि सर्वत्र सप्तभङ्गीन्यायावतारात् सर्व्वं वस्तुजातं द्रव्यपर्य्यायात्मकमिति द्रव्यात्मना सत्त्वैकत्वनित्यत्वाद्युपपादयन्ति पर्य्यायात्मना च तद्विपरीतं, पर्य्यायाश्च द्रव्यस्यावस्थाविशेषाः, तेषाञ्च भावाभावरूपत्वात् सत्त्वासत्त्वादिकं सर्वञ्चसुपपन्नमिति ॥

---

(१) तदुपभोगोपकरणभूतमिन्द्रियमिति पा।

(२) सम्वरो ज्ञानेन्द्रियनिरोध इति पा।

वहस्व कल्याणसम समन्तात्
कुरुष्व तापक्षतिमाश्रितानाम् ।
त्वदङ्घ्रिसङ्गोपिकरा परास्ता-
क्लिसालमद्युक्तिकुठारिकाभि ॥

इति भाष्यसारजैनसिद्धान्तरत्ने पतञ्जलिनिरास
नामाष्टम पाद ॥

---

हे कल्पवृक्षरूपसिद्धान्तरत्नभगवान्‌पक्षंतदेव विमुखसांख्यादि रूप जो समस्त छिन्नरूपकण्टकलता आपको परिवेष्टन करके आपके प्रसारका प्रतिरोध करता था सब युक्तिरूप कुठारद्वारा उनो को छेदन करके समभावसे सर्वप्रकारसे परिवर्द्धित होके हर आश्रित जनों के आध्यात्मिकादितापत्रयक्षयसाधनकरके आह्लादभावको प्राप्तकरो ।

इति भाष्यसारजैनसिद्धान्तरत्नव्याख्याने पतञ्जलि
निरासनामक अष्टमपाद ॥

## नवम पाद ।

(उपसंहार)

प्रथमे मरुदेव्यान्तु नाभेर्जात उरुक्रम ।
दर्शयन् वर्त्मधीराणां सर्व्वाश्रमनमस्कृतमिति ॥
युक्त परमहंसाना धर्म्म ज्ञापयितु प्रभु ।
व्यक्तागुणैर्गरिष्ठत्वाद्विख्यात ऋषभाख्यया ॥

लोकानां सुखप्राप्तौ दुःखपरिहारे च प्रवृत्तिरस्ति, किन्तु ते पुरुषस्य तत्रोपायं न जानन्ति, तेषां तत्सिद्धये महर्षयस्त वदन्ति, महर्षयमत प्राक् प्रत्याख्यानात्, इदानीं पतञ्जलिमतं दर्शयति। पतञ्जलिना पञ्चविंशतितत्त्वानि साङ्ख्योक्तान्येव स्वीकृतानि। षड्विंशस्तु परमेश्वर क्लेशकर्म्मविपाकाशयैरपरामृष्ट पुरुष स्वेच्छया निर्म्माणकायमधिष्ठाय लौकिकवैदिक-

लोकको सुखप्राप्तिमे श्रर दुःख परिहारमे प्रवृत्ति है किन्तु वे तत्रा उपाय नही जानते है। उनो के उस्का सिद्धिके वास्ते महर्षि उसका उपाय कहते है - कपिलादिक मतका पहले प्रत्याख्यान किया है। अब पतञ्जलिका मत दिखाते है। पतञ्जलिने साङ्ख्यके कहने पचीस तत्त्व स्वीकार किए है। वहो समाती परमेश्वर क्लेशकर्मविपाकाशय करके अपरामृष्ट पुरुष स्वेच्छया

सम्प्रदायप्रवर्त्तकः संसाराङ्गारे तप्यमानानां पुरुषाणां अनुग्राहकश्चेति विशेषः । ननु पुष्करपलाशवन्निर्लेपस्य तापः कथमुत्पद्यते येन परमेश्वरोऽनुग्राहकतया कक्षीक्रियते इति चेदुच्यते तापकस्य रजसः सत्त्वमेव तप्यं बुद्ध्यात्मना परिणमते इति सत्त्वे परितप्यमाने तमोवशेन तदभेदावगाहिपुरुषोऽपि तप्यत इत्युच्यते । तदुक्तम्—सत्त्वं तप्यं बुद्धिभावेन वृत्तं भावा ये वा राजसास्तापकास्ते । तप्याभेदग्राहिणी तामसी या वृत्तिस्तस्या तप्य इत्युक्त आत्मा । इति चिच्छक्तापरपर्य्याया भोक्तृशक्तिरात्मा एव परिणामित्वर्थे बुद्धितत्त्वे प्रतिसङ्क्रान्ते च प्रतिबिम्बिते तद्वृत्तिमनु-

---

करके निर्माण काय में अधिष्ठान करके लौकिकवैदिकसम्प्रदाय प्रवर्त्तक संसाराङ्गारसे तप्यमानपुरुषों काऽनुग्राहक ए विशेष है ननु पुष्करपलाशवन्निर्लेप पुरुष को कैसे ताप उत्पन्न होता है जिस्करके परमेश्वर अनुग्राहकता करके स्वीकार करते हो ऐसा वादिने कहा तिस्पर कहते हैं । तापकरजका सत्त्व एव तप्यबुद्ध्यात्मा करके परिणत होता है सत्त्व परितप्यमान होनेसे तमोवश करके तदभेद पुरुषभी तपता है ऐसा कहते हैं । सत्त्वही सो तप्यहै बुद्धि वो भाव करके भाव राजस वेही ताप कहाते हे तप्याभेदग्राहिणी जो तामसी वृत्ति तिस्से आत्मा तप्य है । चिच्छक्ति परपर्याया भोक्तृशक्तिरात्मा एव

भवतीति बुद्धौ प्रतिबिम्बिता सा चिच्छक्तिबुद्धी-च्छायापत्त्या बुद्धिवृत्त्यनुकारवतीति भाव । तथा शुद्धोऽपि पुरुष प्रत्यय बौद्धमनुपश्यति तमनुपश्यन्न तदात्मापि तदात्मक एव प्रतिभासत इति । इत्थ तप्यमानस्य पुरुषस्य विवेकाभ्यासवैराग्यपरिपाक-पूर्वकेण आदरनैरन्तर्यदीर्घकालानुबन्धियमनियमा-द्यष्टाङ्गयोगानुष्ठानेन परमेश्वरप्रणिधानेन च जनिता-त्परमेश्वरप्रसादात् सत्त्वपुरुषान्यताख्यातावनुपप्लवाया जातायामविद्यादय पञ्चक्लेशा समूलकाष कषिता भवन्ति कुशलाकुशलाश्च कर्माशया समूलघात

---

परिणामो अर्थ के बुद्धितत्त्वमे प्रतिसङ्क्रान्त होनेसे उसकी प्रतिको अनुभव करता है। बुद्धिमे प्रतिबिम्बित वो चिच्छक्ति बुद्धी छायापत्ति करके बुद्धिवृत्त्यनुकारवाली होता है ए भाव। तैसे शुद्धभी पुरुषप्रत्यय बौद्धप्रति देखताहै उसको देखताथ को आत्मा भी तदात्मक प्रतिभासता है॥

इसप्रकारतप्यमानपुरुषका विवेकाभ्यासवैराग्यपरिपाक-पूर्वक करके आदरनैरन्तर्यदीर्घकालानुबन्धियमनियमादि अष्टाङ्ग-योगानुष्ठान करके परमेश्वरप्रणिधानसे उत्पन्न भया परमेश्वरके प्रसादसे सत्वपुरुषान्यताख्याति अनुपप्लव होनेसे अविद्यादिपञ्च-क्लेशमूलसे कषिता होते हैं कुशल अकुशल कर्माशय समूलघात

हता भवन्ति । ततश्च पुरुषस्य निर्लेपस्य प्रमाणादि-पञ्चविधचित्तवृत्तिनिरोधादेव असम्प्रज्ञातसमाधि-रूपेण कैवल्येनावस्थानं कैवल्यमिति सिद्धं । अस्या अपि निरसनं पूर्ववदेव ।

य भाव दर्शयेद् यस्य तं भाव स तु पश्यति ।

तञ्चारति स भूत्वासौ तद्ग्रह समुपैति तम् ॥

किं बहुना, प्राणादीनामन्यतममुक्तमनुक्तं वाऽन्यं य भावं पदार्थं दर्शयेद्यस्याचार्य्योऽन्यो वा सुप्तं इदमेव तत्त्वमिति स तं भावमात्मभूतं पश्यत्यय-महमिति वा ममेति तञ्च द्रष्टारं स भावोऽवति यो दर्शितो भावो स भूत्वा रक्षति स्वेनात्मना सर्वतो निरुणद्धि तस्मिन् ग्रहास्तदग्रहास्तदभिनिवेश । इद-

---

क्त होते है । तिससेती निर्लेप पुरुषका प्रमाणादि पञ्चविध चित्तवृत्ति निरोधसेती असम्प्रज्ञात समाधिरूप करके कैवल्यकरके अवस्थान उसीको निर्वाणमुक्ति कहते ह । इस्का भी खण्डन पूर्ववत् जानना । क्या बहुत प्राणादिको का अन्यतम उक्त वाऽनुक्त जो भाव पदार्थ दिखावे जो आचार्य्य एही तत्व है, वो उस भाव प्रति आत्मभूत देखता है ऐ हमथा मेरे उक्त इति तिस देखने वालेका वो भाव सोही करके रक्षित होता है सर्वसेती रोकता है तिस्के विषे यह तद्ग्रह तिस्काऽभिनिवेश एही तत्त्व है। उस्के

मेव तत्त्वमिति स त ग्रहीतारमुपैति तस्यात्मभाव नियच्छतीत्यर्थं ।

ननु विश्वम् सदसद्भिन्नम् । औपनिषदमपि ब्रह्म सर्वशब्दागोचरमित्यादि धर्विरुद्ध जल्पन् जैनमतो मायी चेति नोपयुज्यते प्रपञ्चमिथ्यात्ववादिनो नास्तिकत्व, मायावादमसच्छास्त्र प्रच्छन्न बौद्धमुच्यत इत्यादि स्मरणाच्च ।

ननु न वय खपुष्पवत्तस्य मिथ्यात्व ब्रूम व्यव-

---

ग्रहणकरनेवालेको प्राप्त होता है तिस्का आत्मभावको देताहै । जो प्रपञ्चका साध्यामित्व मिथ्यात्व कु साधन करता है, उस्कु वेदाप्रामाण्यापत्ति होगा यतो द्रमानीत्यादि । अग्नि-होत्रादिकर्मतत्परवाक्यसमूहका तिस विषय करके प्रमाण देति । विषयाभावसे ए सब्यायुक्त जाता ह इत्यादि वाक्य समानदेतो । तब फेर नास्तिकतापत्ति होय । ननु विश्व सत्ऽसत् भिन्न उपनिषद ब्रह्म सबशब्दकाऽवाच्य इत्यादि अविरुद्ध बोलता हुआ जैनमतवा मायी न उपयुक्त होता है । प्रपञ्चका मिथ्यात्व बोलनेवालेका नास्तिकत्व स्मरण होता है । यही लिखा है । मायावाद असत् शास्त्र हे प्रच्छन्न बौद्ध कहा जाताहै ए पहली दिखाया है ।

युक्तिके आभास करके मायी अद्वैतवादी फेर प्रत्यवस्थित होताहै हम प्रपञ्चको आकाशके फुल कीतरे मिथ्या नही

हारिकसत्तास्वीकारात् तेन न वेदाप्रामाण्यं नापि नास्तिकतापत्तिरिति चेन्न अनवधानात्। तथाहि द्विविधं खलु सत्यं पारमार्थिकमपारमार्थिकञ्च। तत्रान्त्यं द्विविधं व्यवहारिकं प्रातीतिकञ्च। तदेतत् सत्यासत्यचतुष्टयं क्रमाद् ब्रह्मप्रपञ्चशुक्तिरौप्येषु वर्त्तते। तत्र व्यवहारिकसत्यस्य प्रपञ्चे अङ्गीकारात् न तद्बोधिवेदाप्रामाण्यम्। पारमार्थिकसत्यत्वा-भावात् तु तस्य मिथ्यात्वमिति हि मतम्। तदेतद-

---

वालते है। कारण उनका व्यवहारिक सत्ता स्वीकार करते हैं। इसवास्ते वेदका अप्रामाण्य वा हमलोकों की नास्तिकता नहीं घटता है ए बात बोलने नहीं सकते हो। नहीभी तोमहारे अनवधानता प्रकाश होती है, दोषका उद्धार नहीं होता है। देख तुमारे मतमें, सत्य दोप्रकार पारमार्थिक उर अपारमार्थिक सत्य। अन्त्यके फेर दोय भेद। व्यवहारिसत्य उर प्रातीति सत्य। वोही सत्यासत्यचतुष्टय क्रमान्वयके विषै ब्रह्म, प्रपञ्च, शुक्ति उर रूपतमे देखा जाता है, तिसमें अपारमार्थिक वा व्यवहारिक सत्य उर प्रपञ्चके विषै अङ्गीकृत होता है। इस हेतुमे व्यवहारिक सत्य उर प्रपञ्चका बोधक वेदवाक्यका अप्रामाण्य होता नहीं। उर पारमार्थिक सत्य के अभावहेतु प्रपञ्चका मिथ्यात्वभी स्थिर है। एही तुमारा मत किन्तु ए मत अयुक्त

युक्तम्। बाध्यार्थबोधकतया वेदाप्रामाण्यानुद्धारात् बाध्यो हि प्रपञ्चः। यदुक्तम्। तत्त्वमस्यादिवाक्यार्थसम्यग्धीजन्ममात्रतः। अविद्या सह कार्येण नासीदस्ति भविष्यतीति।

नापि स च द्वैविध्यस्वीकृत्या बौद्धेभ्यो वैलक्षण्यम्। तैरपि तस्याङ्गीकारात्। यदुक्तम् सत्यन्तु द्विविधं प्रोक्तं सांवृतं पारमार्थिकम्। सांवृतं व्यवहार्यं स्यान्निवृत्तौ पारमार्थिकम्। इति सत्य

---

होता है। कारण बाधित जो व्यवहारिकसत्य प्रपञ्च उसका बोधक जो वेदवाक्य उसके अप्रामाण्यका उद्धार नहीं। प्रपञ्चका बाध्यत्व कहाही है। जैसे तत्त्वमसि आदि वाक्यका अर्थ सम्यक् ज्ञात होनेसे कार्यभूत प्रपञ्चकी सहित कारण भूत अविद्याका लोप होता है।

चौंतो बौद्धतापसिलाञ्छमाप्नोति मायानिलाञ्छनानिह्न स्तिकवादी सत्यद्वय स्वीकार किया तथापि लाञ्छनानिस्तार नहीं ऐसा कहते हैं। सत्यका द्वैविध्य स्वीकारसेभी बाह्य बौद्ध मतसे तो मायावादका कोई वैलक्षण्य दिखा नहीं गया। कारण बौद्ध वोभी स्वीकार करते हैं। तिसके सम्बन्ध में उक्ति ऐसा है, सत्य द्विविध संवृत १ और पारमार्थिक = संवृत शब्दका अर्थ व्यवहार। निवृत्तिपक्ष में जो पारमार्थिक वही

ममुपाश्रित्य बौद्धाना धर्मचोदना । लोके सावृत मत्यञ्च मत्यञ्च पारमार्थिकम् । विचार्य्यमाणे नासत्य मत्यञ्चापि प्रतीयते । यस्य तत सावृत सत्य व्यव हारपद च तदिति । तस्मान्न तैभ्यस्तत । अपिच मत्यशब्दो न नानार्थ मत्यभेदे प्रमाणाभावात । यदि मत्यशब्दस्य परमार्थवाच्यतयार्थभेद स्यात्तदा मदाकारानुगतप्रत्ययानुपपत्ति । नानार्थसैन्धवादि-पदे तद्दर्शनात् । मृषामदिति वदतोव्याघाताच्च ।

---

गौमत को आश्रय करके ही बौद्धो के धर्मकी चोदना है। मवृतमत्य लौकिकपारमार्थिक मत्यकैं विचारमे मत्यका मत्त्व-रूपमे भी प्रतीति होताहै । जिस्का वही मत्य आवृत रहताहै उमके सम्बन्धमे सयका व्यवहारिकता इसहेतुमेंकी बौद्ध सम्प्रदाय सेती मायावादीका कुछभी वैलक्षण्य देखा नही जाता है। अब मत्य शब्दका नानार्थकता खण्डन करते है। उर मत्य शब्द नानार्थकभीनही है मत्यके भेदमे प्रमाण नहीं यदि मत्यशब्दसे मिथ्यायभी मत्यार्थको बोध कराया तब उस्का अर्थ भदभी घटे इस्तर अर्थ भेद घटनेमे मदाकार जो अनुगतप्रत्यय तिस्की अनुपपत्ति होय । नानार्थक सैन्धवादि पदमे एकाकार अनुगतप्रतीति देखा नहि जाता है विशेष सेतो मिथ्याको मत्य बोलनेमे अपने उक्तिकाही व्याघात

तस्मात् सावृतशब्दवन्मृषार्थके व्यवहारिकशब्दो प्रतारणाय प्रयुक्त इति सत्यमामान्य व्यवस्था नोपपन्ना ॥

स्यादेतत् ब्रह्मसत्तेन प्रपञ्चसत्वात्तेन वेदप्रामाण्य। तदन्यसत्ताभावाच्च मृषात्वोक्तिर्नतु नि स्वरूपत्वात्। नेह नानास्तिकिञ्चनेति श्रुतिरपि तदन्यसत्ता निषेधपरा। न चातिप्रसङ्ग कनकमुकुटयोरिव उपादानोपादेयभावस्य नियामकत्वात्। इतरथा सर्वं खल्विदं ब्रह्मेत्यव सामानाधिकरण्योप-

---

होताहै। इसहेतुसेतो सावृतशब्दको तरे। मृषार्थक व्यवहारिक शब्द प्रतारणाके निमित्त प्रयुक्त हुवाहै। यही समझा जाता है। इस हेतुसे सत्यसामान्य व्यवस्था उपपन्न नहीं होता है॥

निरस्तेऽपि माया निर्मल फेर प्रत्यवस्थित होता है। ब्रह्मका सत्ता में ही प्रपञ्चका सत्ता है। इस प्रकार तज्जन्य ही वेद का प्रामाण्य है ब्रह्मभिन्न अन्य वस्तुका सत्ताके अभाव हेतु प्रपञ्चका मिथ्यात्वकथन, नि स्वरूपत्वके वशसेतो प्रपञ्चको मिथ्या कहा जाता नहीं। "नेह नानास्ति किंचन' इत्यादि श्रुतिमे ब्रह्मभिन्न सत्ता का निषेध करता है ब्रह्मसत्ता प्रपञ्चकी सत्तामे घट सत्ता पटकी सत्ता का अतिप्रसङ्ग होता नहीं, कारण कनक उर मुकुटके न्याय उपादान उपादेय भावही उसका नियामक है। जहा उपादान उपादेय भाव नहीं, वहा एककी

पत्नये तज्ज्ञत्वाद्यनुपपत्तिरिति। इदमप्यपेशलं चोद्य-चमत्वात्। तथाहि ब्रह्मसत्वेति किं ते विवक्षितं। किं ब्रह्मनिष्ठा सत्ता किं ब्रह्मस्वरूपा सा उत ब्रह्मभेद्याहोस्वित् ब्रह्मव्यतिरेकेणाभाव ? आद्ये सा पारमार्थिकी बाध्या वा? प्रथमेऽपसिद्धान्तापत्ति अधिष्ठानज्ञानबोधस्य धर्मस्य ब्रह्मण्यस्वीकारात पारमार्थिकसरोपितस्य प्रपञ्चस्य ब्रह्मवत सत्यत्वस्य। न च तत्सत्त्वेऽपि

---

सत्ता में अन्यका सत्ता घटता नहीं अन्यथा सर्वंवम् इद ब्रह्म इसो स्थलमें समानाधिकरणके उपपादनार्थ जो समस्तको ब्रह्मजन्य वर ब्रह्माधीन आदि बोलके युक्ति प्रदान किया होय उस्का असगति घटे। पूव पत्नका ए प्रकार युक्ति सुधारु नहीं, कारण वो विचार सहन नहीं कर सकता है। प्रतिवादीके प्रति जैनसिद्धात पुछता है पूवपत्तके मतमे ब्रह्मसत्ता कह्ने मे क्या बोध होता है ? उस्का अथ क्या ? ब्रह्मनिष्ठा सत्ता ब्रह्मस्वरूपा सत्ता ब्रह्मभेन्द्र सत्ता वा ब्रह्मातिरिक्त जो अभाव वो इ सत्ता। ऐसे पूर्वपक्ष रचना करके उनकों खगडन करता है। ब्रह्मसत्ता कहनेमे जो ब्रह्मनिष्ठा सत्ता कहा होय तो अब फेर जिज्ञासा होता है। वो सत्ता पारमार्थिकी अथवा बाध्या ? उस्को पारमार्थिको कहनेमे अपसिद्धातापत्ति होय। कारण अधिष्ठान ज्ञानद्वारा बोध जो धर्म वो ब्रह्ममे स्वीकृत होता नहीं विशेष सेतो पारमार्थिक सत्ता विशिष्ट प्रपचका ब्रह्म की

स्वरूपाभावात्सत्त्वं पारमार्थिकसत्तोपेतस्य धर्मस्य कुत्रापि तददर्शनात् सत्तोपेतश्चेन्मृषात्मृषाचेन्न सत्तोपेत। सत्तासामान्यशून्यापि सत्तामतीदृष्टा सत्तोपेतोऽप्यसन्नदृष्टचर। किञ्च समानानां भावं सामान्यं यत् सत्ताशब्देन उच्यते न च तत् मृषासत्तयो सम्भवत्। यदुक्तं सत्त्वं न च सामान्यं मृषार्थपरमार्थयो। विरोधान्न च वृक्षत्वसामान्यं सिद्धवृक्षयोरिति॥ न चैतद् वेदाप्रामाण्यानुसारात्।

---

तुच्छ सत्त्व घटे। अर्थात् वही सामान्य रहनेमें भी स्वरूप सत्ता उसका अभाव हेतु असत्वका कहा जायगा, ऐसा उक्ति सङ्गत होता नहीं। जिस हेतु में पारमार्थिक सत्ता विशिष्ट धर्म का कहां भी स्वरूपाभाव देखा नहीं जाता है। जो सत्ता विशिष्ट, वा जो मिथ्या होय, तब अवश्य ही वह सत्ता विशिष्ट नहीं सत्ता सामान्य शून्य सत्ता का अस्तित्व ही प्रतीत होता है, किंतु सत्ताविशिष्टका असस्तित्व कभी भी प्रतीत होता नही अधिकन्तु समानका भावरूप जो सामान्य, उसको सत्ता शब्द करके निर्देश किया होय सो कभी भी मिथ्या अर्थात् असत्का उर सत् अर्थात् ब्रह्म का सबध सम्भव होता नहीं मृषाथ में भी परमार्थका सत्त्व होय, किंतु सामान्य होता नहीं। परस्पर विरोधसे तो सिद्ध उर वृक्षका वृक्षत्व सामान्य होता नहीं एइ प्रकार द्वितीय पक्षभी सङ्गत होता नहीं।

पत्तये तज्ज्ञत्वाद्यनुपपत्तिरिति। इदमप्यपेशलं चोद्यासमत्वात्। तथाहि ब्रह्मसत्वेति किं ते विवक्षितं। किं ब्रह्मनिष्ठा सत्ता किं ब्रह्मस्वरूपा सा उत ब्रह्मभेद आहोस्वित् ब्रह्मव्यतिरेकेणाभाव ? आद्ये सा पारमार्थिकी बाध्या वा ? प्रथमेऽपसिद्धान्तापत्तिः अधिष्ठानज्ञानबोध्यस्य धर्मस्य ब्रह्मण्यस्वीकारात् पारमार्थिकसत्तोपेतस्य प्रपञ्चस्य ब्रह्मवत् सत्यत्वस्य। न च तत्सत्त्वेऽपि

---

सत्ता मे अन्यका सत्ता घटता नहीं अन्यथा सर्ववस्तु इदं ब्रह्म इसी स्थलमें समानाधिकरणकी उपपादनार्थ जो समस्तको ब्रह्मजन्य व ब्रह्माधीन आदि बोलके युक्ति प्रदर्शन किया होय, उसकी असंगति घटे। एव पक्षका ए प्रकार युक्ति सुचारु नहीं कारण वा विचार सहन नहीं कर सकता है। प्रतिवादीके प्रति जैनसिद्धांत पूछता है पूर्वपक्षके मतमें ब्रह्मसत्ता कहने मे क्या बोध होता है ? उसका अर्थ क्या ? ब्रह्मनिष्ठा सत्ता ब्रह्मस्वरूपा सत्ता ब्रह्मभेद सत्ता वा ब्रह्मातिरिक्त के अभाव को ही सत्ता। ऐसे पूर्वपक्ष रचना करके उसको खण्डन करता है। ब्रह्मसत्ता कहनेमें जो ब्रह्मनिष्ठा सत्ता कहा होय तो अब फेर जिज्ञासा होता है। वो सत्ता पारमार्थिकी अथवा बाध्या ? उसको पारमार्थिकी कहनेमें अपसिद्धान्तापत्ति होय। कारण अधिष्ठान ज्ञानद्वारा बोध जो धर्म वो ब्रह्ममें स्वीकृत होता नहीं विशेष सेतो पारमार्थिक सत्ता विशिष्ट प्रपञ्चका ब्रह्म के

स्वरूपाभावादसत्त्वं पारमार्थिकसत्तोपेतस्य धर्मस्य कुत्रापि तददर्शनात् सत्तोपेतश्चेन्मृषामृषा चेन्न सत्तोपेत । सत्तासामान्यशून्यापि सत्तासतीदृष्टा सत्तोपेतोऽप्यसन्नदृष्टचर । किञ्च समानानां भाव. सामान्यं यत् सत्ताशब्देन उच्यते न च तत् मृषासत्ययो सम्भवत् । यदुक्तं सत्त्वं न च सामान्यं मृषार्थपरमार्थयो । विरोधान्न च हृदत्वसामान्यं सिद्धहृदयोरिति ॥ न चेतर. वेदाप्रामाण्यानुसारात् ।

---

तुल्य सत्त्व घटे। अर्थात वहाँ सामान्य रहनेसे भी स्वरूप सत्ता उसका अभाव हेतु असत्त्वको कहा जायगा, ऐसा उक्ति सङ्गत होता नहीं। जिस हेतु से पारमार्थिक सत्ता विशिष्ट धर्म का कहीं भी स्वरूपाभाव देखा नहीं जाता है। जो सत्ता विशिष्ट, या जो मिथ्या होय, तब अवश्य ही वह सत्ता विशिष्ट नहीं सत्ता सामान्य शून्य सत्ता का अस्तित्व ही प्रतीत होता है, किन्तु सत्ताविशिष्टका अनस्तित्व कभी भी प्रतीत होता नहीं अधिकन्तु समानका भावरूप जो सामान्य, उसको सत्ता शब्द करके निर्देश किया जाय सो कभी भी मिथ्या अर्थात् प्रपञ्चका और सत्य अर्थात् ब्रह्म का सम्बन्ध सम्भव होता नहीं मृषार्थ के जो परमार्थका सत्त्व होय, किन्तु सामान्य होता नहीं। परस्पर विरोधसे तो सिद्ध और हृदका हृदत्व सामान्य होता नहीं इस प्रकार, द्वितीय पञ्चमी सङ्गत होता नहीं।

न हि वाध्यसत्तावोधकं प्रमाणं। किंचास्मिन् पक्षे ब्रह्मणोऽसत्यतापत्तिः। वाध्यसत्त्वयोगात्। वेदाप्रामाण्यं निर्विषयत्वात्। न च सत्ताभावेऽपि सद्रूपत्वात् ब्रह्मणोऽसत्यतापत्तिः। तद्वत् प्रपञ्चस्यापि तद्‌नापत्तेः स देवसोम्येदमित्यादिना तस्यापि सद्रूपत्वश्रवणात्। यत्तु दीर्घभ्रमजनकत्वात वेदस्य प्रामाण्यं तन्मन्दं ततो नोलिमचन्द्राल्पत्वज्ञानजनकस्यापि तथात्वात्॥

---

कारण उसमें वेदकाऽप्रामाण्यका स्वीकार होता नहीं। वाध्य सत्ता कभी भी बोधक प्रमाण होने नहीं सकता। विशेष वैसे एह पक्षमें ब्रह्मका असत्यतापत्ति घटे। कारण, इसमें वाध्य सत्ताके साथ ब्रह्मका योग हेतुक उसऽनिष्ट घटता है। अब निर्विषयता प्रयुक्त वेदकाऽप्रामाण्य घटता है। जैसे सत्ता भावमेंभी सद्रूपत्व हेतु ब्रह्मका असत्यत्व घटता नहीं तद्रूप प्रपंचका भी असत्यत्व घटता नहीं, कारण, "स देव सौम्येदमग्र आसीत्" प्रभृति श्रुतिमें प्रपंचका भी सद्रूपत्व श्रवण किया जाता है। एह रूप जो मत सोभी उत्तम नहीं। दीर्घ भ्रमजनकत्व हेतु वेदवाक्यका प्रामाण्य बोलना उचित होता नहीं, कारण वो होनेसे नोलिमचन्द्राल्पत्व ज्ञानका जनक जो उसका भी प्रामाण्य स्वीकार करना होगा।

नापि ब्रह्मस्वरूपेति द्वितीय । अबाधितसत्तायोगेन प्रपञ्चस्य मिथ्यात्वासिद्धे । न तु तृतीय । विरुद्धयोस्तयोरैक्यानुपपत्ते । न च चतुर्थ । सर्वं खल्विदमित्यैकार्थानुपपत्ते । न हि तदभावे तदैकार्थसंभव'। न च यश्चौर स स्थाणुरितिवत् बाधदशाया तदितिवाच्य वेदाप्रामाण्यानिस्तारादिति। अपिच मायिना दृष्टिसृष्टि स्वीकृता दृष्टिसमया सृष्टि-

---

दूसरा पक्षमे दूषण दिखाते हैं। सत्ताका ब्रह्मस्वरूपत्व रूप दूसरा पक्षभी युक्त होता नहीं। कारण, अबाधित सत्ताके योग हेतु प्रपंचका मिथ्यात्व असिद्धि होय। तृतीय पक्षभी सङ्गत होता नहीं, जिस हेतुसे परस्पर विरुद्ध ब्रह्म ओर ब्रह्मभेद रूप प्रपंचका ऐक्य अनुपपन्न होता है। चतुर्थ पक्षभी स्वीकार होता नहीं, जिस हेतुसे ब्रह्म व्यतिरिक्तकाऽभावको सत्त्व कहनेसे, "सर्व खल्विद ब्रह्म" इस वाक्य का एकार्थता अनुपपन्न होय ब्रह्मव्यतिरिक्तके अभाव के साथ ब्रह्मका सामानाधिकरण्य ही संभव होता नहीं। 'जो चौर, सो स्थाणु" ए वाक्यके न्याय बाधक दशामें सामानाधिकरण्य भी कहा जाय नहीं, कारण उससे वेदका अप्रामाण्य का निस्तार होता नहीं। ओरभी मायावादी कर्तृक दृष्टि सृष्टि स्वीकृत होती है। सृष्टि दृष्टिसमया दृष्टि सृष्टिसमया नहीं अर्थात् जब दृष्टि तब सृष्टि, जब सृष्टि तब दृष्टि नहीं। दृष्टि केऽभावमें सृष्टिकाऽभाव, सृष्टिकेऽभावमें दृष्टि-

रिति। मायैया क्षणिकविज्ञानपन नातिरत्तेते तत्रार्थानामर्थात क्षणिकत्वात्। नचात्र क्षणिक विज्ञानमात्रमस्तीति स्वीकारात् ततोभेदस्तत्र प्रमाणाभावात् दर्शितं चैतत् प्राक्॥

किञ्च मायिमत शून्यवादान्नातिरिच्यतेऽविद्यावच्छिन्न ज्ञान महत्तावच्छिन्न शून्य च। सर्वज्ञानमिति शून्यमिति च भावनाप्रकर्षादविद्याया सं हतेश्च विनाशे सति ज्ञानमात्र शून्यमात्र चावशिष्यते।

---

काऽभाव नही। एह इटि छटि क्षणिक विज्ञान पक्षकोऽतिक्रम नही करता क्षणिकविज्ञान शब्दसे अथ समस्त क्षणिक बोनके स्वीकृत होत है, अद्वैतवादमेऽक्षणिक विज्ञान अर्थात् नित्य विज्ञानमात्र ब्रह्मकाऽस्तित्व स्वीकृत होता है। बोनके उक्त क्षणिकविज्ञानवादसेतो अद्वैतवादका भेद होता ह। ऐसा बोला जाता नही। कारण निर्गुण चिन्मात्र नित्य वस्तुकाऽस्तित्व प्रमाण प्राप्त होता नही। ए पहना दिखाया है।

अथ माध्यमिक बुद्धशिष्य मतावलम्बिन। अब माध्यमिक बुद्धका शिष्य मत अवलम्बन निर्गुणविद्वैतवादोका दिखात ह। उरभो मायावादी का मत शून्यवाद सेता जुदा नही। अविद्यावच्छिन्न जो ज्ञान सो महत्तावच्छिन्न उर शून्य सकलज्ञान एव शून्य इस प्रकार भावना का प्रकर्ष हेतु अविद्या उर सहृत्ति का विनाश होनेसे ज्ञानमात्र शून्यमात्र अवशिष्ट रहता ह। काय

कार्यनाशस्य कारणरूपत्वात् सैव मुक्तिः । तस्य तस्य च परसामान्यरूपं सत्त्वं भावप्रतियोगिकत्वरूपमसत्त्वं अनुकूलवेद्यत्वरूपं सुखत्वं प्रतिकूलवेद्यत्वरूपं दुःखत्वञ्च नास्ति किञ्च यद्वास्तवं नास्ति उभयं निर्लेपमजरं समं बाध्यं सर्वमानाविद्धं स्वयं प्रभावत । ननु वेद्यत्वे सत्यपरोक्षव्यवहारार्हत्वमनन्याधीनापरोक्षत्वं वा ब्रह्मणः स्वप्रकाशत्वं । तच्च न शून्यस्यास्तीति कथमुभयोर्मान्यमिति तुच्छमेतत् । अपरोक्षं हि स्वेनैव

---

कारण नाश ही कारण नाश स्वरूप वही मुक्ति । विनाशमात्र का उर शून्यमात्र का पराजिता के न्याय सत्ता नही वा सत्ताभाव का तादृशपणा अर्थात् भाव प्रतियोगिकाभावरूपत्व भी नही । अनुकूलवेद्यत्वरूप सुखत्व उर प्रतिकूलवेद्यत्वरूप दुःखत्व भी उनके नही ऐसे इस हेतुसे उभोंका सब प्रमाण गोचरत्व तुल्य ही होता है । उर जो वस्तु ऐसी नही ऐसे ही उभय ही निर्लिप अजर अमर सम बाध्य सर्वमानाविद्ध उक्त प्रकाशस्वरूप । उनका तुल्यत्व अवश्य स्वीकार्य ।

अब माध्यमिकसेती अपना वैलक्षण्य कहने कु मायी शङ्का करता है जो दोनो ब्रह्मका वही स्वप्रकाशत्व उर वेद्यत्व रहते भी अपरोक्ष व्यवहार योग्यत्व वा अनन्याधीनाऽपरोक्षत्व दोनमे जो ही होय शून्यवादपक्षमे सम्भव होता नही इस हेतु ऐसी यही धर्म उभय के पक्षमें किसतरसे मान्य किया जाय ? एह

स्वविषयकमन्यविषयकं वा । नाद्य स्वविषयकतायाः मायिनाऽनङ्गीकारात् । अङ्गीकारे वा चिद्विषयकत्वेऽपि स्वरूपदृश्यत्वापत्त्या ब्रह्मणोमिथ्यात्वापत्तिर्विषयत्वाविषयत्वाभ्यां वैशिष्टापत्तिश्च नेतर मोक्षेऽन्याभावेनान्यविषयापरोक्षसद्भावात् । तस्मात् शून्यसद्वत्त्वो पर्यायतयैव ज्ञानायेव विद्ययोःस्थितिरिति

---

जो मायावादी तुमारा पूर्वपक्ष भी तुच्छही होता है, कारण अपरोक्ष बोलने से अवश्य अपणा प्रत्यक्ष का विषय व समझते होगा । जो यहो हुवा तब वोही प्रत्यक्षविषयता स्वविषयक अर्थात् ब्रह्मविषयक वा अन्यविषयक वा तदन्य जीवविषयक बोला जायगा मायावादी कभी भी उस्का स्वविषयकता स्वीकार करने चाहता नहो । इस हेतु से प्रथम पक्ष स्वीकार करा नहो जायगा जो कोइ गतिसे भी स्वीकार किया होय तो यही स्वविषयक पदमें चिद्विषयता ही समझा जायगा । चिद्विषयकपरोक्षमें स्वरूपका दृश्यतापत्ति होय जैसे तिस्से अदृश्य वस्तु दृश्य होनेसे ब्रह्मका मिथ्यात्वापत्ति घटे विशेष सेती विषयत्व उर अविषयत्व ब्रह्मका वैशिष्ट्यापत्ति दोष होता है एरूप दूसरा पक्षभी संगत नहो कारण मोक्षमे अर्थात जीवकाऽभाव हेतु तद्विषयकऽपरोक्षज्ञानकाऽथात प्रत्यक्षकाऽसद्भाव होय इस हेतुसे शून्य तु सद्वत्ति दोनूका पर्यायता द्वारा ज्ञानका निमित्त ही विद्याद्यकी स्थिति स्वीकार करना होता है सुतरा माया

मायी माध्यमिक एव। वेदान्तानामखण्डार्थबोधकत्व समग्रागोचरप्रमाजनकत्व स्वीकुर्वता मायिना सत्यज्ञानमनन्तमित्यवासज्जडपरिच्छिन्नव्यावृत्त ब्रह्मस्वरूपमेव तथेति व्याख्यात। यथा गौरगोव्यावृत्त्या इत्यादिक शून्यवादिना बौद्धेन। जैनसाधर्म्यं जैमिनिना रिलाकित वेदोक्तै शुभकर्मभि दु खहानि सुखलाभश्चेति जैमिनि स्यादेतत्। न ब्रह्मावगति पुरुषार्थ। पुरुषव्यापारव्याप्यो हि पुरुषार्थ। न चास्या ब्रह्मस्वभावभूताया उत्पत्तिविकारसस्कारप्राप्तय सम्भवन्ति। तथासत्यनित्यत्वेन तत् स्वाभा-

---

वादीका मत माध्यमिकके साथ एकही होता है। अब मायावादी बोलता है वेदांती सकल अखण्डार्थबोधक और समग्रागोचर शब्दकार्य्य गुणसबन्ध जिस्का गोचर अर्थात विषय होता नही वैसी प्रमा बोलनेसे निर्विशेषब्रह्मविषयिणी जाना जाय वेदात समस्त वही प्रमाही उत्पन्न करते हैं सत्य ज्ञानमनत बोलने से असत् जड परिच्छिन्न ब्रह्मका स्वरूप नही'। एही मायावादीका व्याख्या। गो जैसाऽगोऽर्थात् गो भिन्नसे भिन्न ब्रह्म भी तद्रूप अर्थात जडादि से भिन्न एही शून्यवादी बौद्धका मत इससे दूनोंका ऐक्यही है। जैनका सखा जैमिनीका मतहै॥ वेदोक्त कर्म करनेसे दुःख हानि सुखका लाभ एही जैमिनिका मत है।

व्यानुपपत्ते । नचोत्पत्त्याभावे व्यापारव्याप्यता ; तस्मान्न ब्रह्मावगति पुरुषार्थ इति । न चैतदुभय-मप्यस्तीत्याह ।—"फलजिज्ञास्यभेदाच्च" फलभेद विभजते । "अभ्युदयफल धर्म्मज्ञान" मिति जिज्ञासाया वस्तुतो ज्ञानतन्त्रत्वात ज्ञानफल जिज्ञासा-फलमिति भाव । न केवल स्वरूपत फलभेद-सद्भुतपादनप्रकारभेदादपि तद्भेद इत्याह । तच्चानु-ष्ठानापेक्ष ब्रह्मज्ञानन्तु नानुष्ठानान्तरापेक्षम् । शाब्द-ज्ञानाभ्यामात्रानुष्ठानान्तरमपेक्षते । नित्यनैमित्तिक कर्म्मानुष्ठान सह भावस्याधायत्वादिति भाव । जिज्ञास्यभेदमात्यन्तिकमाह । भव्यश्च धर्म्म इति"। भविता भव्य कर्त्तरि कृत्य । भविता च भावकव्यापार-निवर्त्त्यस्तथा तत्तन्त्र इति । तत प्राक्ज्ञानकाले नास्तीत्यर्थ. । भूत सत्य सदैकान्ततो न कदाचिदस-दित्यर्थ । न केवल स्वरूपतो जिज्ञास्ययोर्भेदो ज्ञापक-प्रमाणप्रवृत्तिभेदादपि भेद इत्याह । "चोदना प्रवृत्तिभेदाच्च ।" चोदनेति वैदिकशब्दमाह । विशे-षेण सामान्यस्य लक्षणात प्रवृत्तिभेद विभजते । "या हि चोदना धर्म्मस्ये 'ति आज्ञादीना पुरुषाभि-प्रायभेदानामसम्भवादपौरुषेये वेदे चोदनोपदेश ।

अतएवोक्तं (जैमिनिना) "तस्य ज्ञानमुपदेश" इति सा च मार्थ्यं च पुरुषव्यापारे भावनाया तद्विषये च योगादौ, सा हि भावनाविषयः, तदधीन-निरूपणत्वात् प्रयत्नस्य भावनाया । पिञ्च वम्बन इत्यस्य धातोर्विषयपदव्युत्पत्तेः भावनायाम्तङ्कारेण च यागादेर्मेलितोपयतामवगमन्तो ब्रह्मचोदना तु पुरुषमवबोधयत्येव केवलं न तु प्रवर्त्तयन्त्यव-बाधयति। कुत ? अवबाधस्य प्रवृत्तिरहितस्य चोदना-जन्यत्वात् नन्वात्मा ज्ञातव्य इत्यवबोध इति समा-नत्व धर्मचोदनाभिर्ब्रह्मचोदनानामित्यत आह " न पुरुषाऽवबोधे नियुज्यते"—अयमभिसन्धि न तावत् ब्रह्मसाक्षात्कारे पुरुषो नियोक्तव्य.। तस्य ब्रह्म-स्वाभाव्येन नित्यत्वादकार्य्यत्वात् नापि उपासनाया तस्या अपि ज्ञानप्रकर्षे हेतुभावस्यान्वयव्यतिरेक-सिद्धतया प्राप्तत्वेनाभिधेयत्वात् । नापि शाब्दबोधे । तस्याप्यधीतवेदस्य पुरुषस्य विदितपदतदर्थस्य समधि-गतशाब्दन्यायतत्त्वस्याप्रत्यहमुत्पत्ते.। अत्रैव दृष्टान्त-माह—"यथाचार्थेति" दार्ष्टान्तिके योजयति । "तद्व-दि'ति। अपि चात्मज्ञानविधिपरेषु वेदान्तेषु नात्मतत्त्वविनिश्चय शास्त्र स्यात । " अपि —

तत्त्वपरास्ते किन्तु तज्ज्ञानविधिपरा। यत् परास्ते तएव तेषामथा न च आधस्य बोध्यनिष्ठत्वादर्पेक्षितत्वादन्यपरेभ्योऽपि बोधतत्त्वविनिश्चय। समारोपणापि तदुपपत्ते। तस्मान्न बोधविधिपरा वेदान्ता इति सिद्धम्। किञ्च द्विरूप ब्रह्मेति जैमिनेरभिमत मनुष्ठेय क्रियारूप प्राप्य चित्सुखरुपश्चेति। ननु धर्म्मानुष्ठानवशादभिमतधर्म्मसिद्धिरिति जेगीयते भवता। तत्र धर्म्म कि लक्षणक कि प्रमाणक इति चेत् श्रूयतामवधानेन यस्य प्रश्नस्य प्रतिवचन प्राच्या मीमासाया प्रदर्शित जैमिनिना मुनिना। सा हि मीमासा द्वादशलक्षणी, पुन स्याद्वादप्रसगागत, तद्यथा—

सप्त चैषा पदार्था सम्मता। सक्षेपमाह। सक्षेपतस्तु द्वावेव पदार्थाविति। बोधात्मको जीव जडवर्गस्त्वजीव इति। यथायोग्य तयोर्जीवाजीवयोरिममपर प्रपञ्चमाचक्षते। तत्राह पञ्चास्ति-

---

फेर स्याद्वादप्रसगागत कहते है सो ऐसे। सात इनो के पदार्थ समत है। सक्षेप कहते है। सक्षेपसे दोही पदार्थ है। बोधात्मक जीव। जडवर्ग अजीव २ यथायोग्य जीवाजीवकाए अपरप्रपच कहते है। पञ्चास्तिकायानामिति। सर्व इनो का

कायानामिति। सर्वेषामप्येषामवान्तरप्रभेदानिति। जीवास्तिकायस्त्रिधा। बद्धोमुक्तोनित्यश्चेति। पुद्गलास्तिकायः षोढा। पृथिव्यादीनि चत्वारि भूतानि स्थावरजङ्गम चेति। धर्मास्तिकाय प्रवृत्त्यनुमेयो-ऽधर्मास्तिकाय स्थित्यनुमेय। आकाशास्तिकायो द्विधा लोकाकाश अलोकाकाशश्च तत्रोपर्य्युपरिस्थितानां लोकानामन्तर्वर्त्तिलोकाकाशस्तेषामुपरि मुख्यस्थान-मलोकाकाश। तत्र हि न लोकाः सन्ति तदेव जीवा-जीवपदार्थौ पञ्चधा प्रपञ्चितौ आस्रवसंवरनिर्जरा स्त्रय पदार्था. प्रवृत्तिलक्षणा प्रपंचते। द्विधा प्रवृत्ति सम्यक् मिथ्या च, तत्र मिथ्याप्रवृत्तिरास्रव

---

अवांतर प्रभेद। जीवास्तिकाय तिन प्रकार। बद्ध १ मुक्त २ नित्य ३। पुद्गलास्तिकाय ४ प्रकार। पृथिव्यादीक चार भूत स्थावरजगम। धर्मास्तिकाय प्रवृत्त्यनुमेय है। अधर्मास्तिकायस्थित्यनुमेय है। आकाश दोप्रकारका लोकाकाश १ अलोकाकाश २। तहा उपरि उपरि रहे हुए लोकमें अतर्वर्त्ति लोकाकाश उनके उपर मुख्यस्थानऽलोका काश। तहां लोक नहो है। इसफेर जीवाजीवपदार्थ पांचप्रकार करके प्रपञ्च किए। आस्रव संवर निर्जर तीन पदार्थ प्रवृत्तिलक्षण कहते है। दो प्रकार प्रवृत्ति—सम्यग् वर मिथ्या तहां मिथ्याप्रवृत्ति आस्रव

आस्रवयति पुरुषं विषयेष्विती न्द्रियप्रवृत्तिरास्रवः । इन्द्रियद्वाराहि पौरुषज्योतिर्विषयान् स्पृशद्रूपादि-ज्ञानरूपेण परिणमत इति । अन्ये तु कर्माण्यास्रव-माहुः । तानि हि कर्त्तारमभिव्याप्य स्रवति कर्त्तारमनुगच्छन्तीत्यास्रवः सेयं मिथ्याप्रवृत्तिरनर्थ-हेतुत्वात् । संवरनिर्जरौ च सम्यक् प्रवृत्ती । तत्र शमदमादिरूपा प्रवृत्तिः संवरः । साह्यास्रवस्रोतसो द्वारं संवृणोतीति संवर उच्यते । निर्जरस्त्वनादि-कालप्रवृत्तिकषायकलुषपुण्यापुण्यप्रहाणहेतुस्तप्तशिला रोहणादि । स हि निःशेषं पुण्यापुण्यसुखदुःखोप-भोगेन जरयतीति निर्जरः । बन्धोऽष्टविधं कर्म ।

---

है। इन्द्रियद्वारा पौरुषज्योतिविषयों को स्पृशद्रूपादि ज्ञान करके परिणत है। अन्य कर्मों को आस्रव कहते हैं। वे कर्मकर्त्ताको अभिव्याप्य करके कर्त्ताको अनुगमन करे उस्को आस्रव कहते हैं। सोए मिथ्या प्रवृत्ति अनर्थ हेतु है। संवर निर्जर सम्यग्प्रवृत्ति है। तह शमदमादिरूप प्रवृत्ति संवर है। आस्रवस्रोतके द्वार कुं संवरण करें उस्कुं संवर कहते हैं। निर्जरातो अनादिकालसे प्रवृत्तिकषायकलुषपुण्यपापप्रहाणहेतु तप्तशिलारोहणादिकरके समस्त पुण्यापुण्यसुखदुःखोपभोगकरके क्षीण करे उस्को निर्जरा कहते हैं। बंध अष्टविध कर्म है।

तत्र घातिकर्म चतुर्विधं। तद्यथा ज्ञानावरणीय १ दर्शनावरणीय २ मोहनीय ३ अन्तरायमिति ४। तथा चत्वार्य्यघातिकर्माणि। तद्यथा वेदनीय नामित्र २ गोत्रिक आयुष्कश्चेति तत्र सम्यग्ज्ञान न मोक्षसाधनं। नहि ज्ञानाद्वस्त्वसिद्धिरिति प्रसंगादिति विपर्ययो ज्ञानावरणीय कर्मोच्यते आर्हतदर्शनाभ्यां न मोक्ष इति ज्ञान दर्शनावरणीय कर्म बहुषु विप्रतिपत्तिषु तीर्थङ्करैरुपदर्शितेषु मोक्षमार्गेषु विशेषानवधारणं मोहनीय कर्म। मोक्षमार्गप्रवृत्तानां तद्विघ्नकर विज्ञानमन्तराय कर्म। तानीमानि श्रेयोहन्तृत्वा-

---

तहां घाती कर्म चतुर्विध है सोही ज्ञानावरणीय १ दर्शनावरणीय २ मोहनीय ३ अन्तराय ४ तैसेही अघाति कर्म। वेदनीय १ नाम २ गोत्र ३ आयु ४।

तहां सम्यक्ज्ञानमोक्षसाधन नहीं। नहि ज्ञानसे वस्तु सिद्धि है। प्रसंगसे ज्ञानाच्छादककर्म ज्ञानावरणीय कर्म कहते है। केवल दर्शन सेती मोक्ष होता नहीं ज्ञान दर्शन आवरणीय कर्म कहते हैं बहुषु विप्रतिपत्तिमे तीर्थंकरोंने दिखाया है मोक्षमार्ग में विशेषानवधारणरूप मोहनीय कर्म। मोक्षमार्गमे विघ्नकरनेवाला है विज्ञानान्तराय कर्म। इनचारो को घाती कर्म कहते है। अघाती कर्म सो

दघातिकर्माण्युच्यन्ते। अघातिकर्माणि तद्यथा— वेदनीयं कर्म शुक्लपुद्गलविपाकहेतु तद्धन्योऽपि निःश्रेयसपरिपन्थितत्त्वज्ञानविघातकत्वात् शुक्ल-पुद्गलारम्भकवेदनीयपरमाणुगुणः। नामिकं कर्म। तद्धि शुक्लपुद्गलस्याद्यवस्था कललबुद्बुदादिमारभते। गोत्रिकमव्याकृतं। ततोऽप्याद्या शक्तिरूपेणाव-स्थितं। आयुष्कन्त्वायु कार्यति कथयत्युत्पादनद्वारे-णेत्यायुष्कं। तान्येतानि शुक्लपुद्गलाद्याश्रयत्वाद-घातिकर्माणि तदेतत्कर्माष्टकं पुरुषं बध्नातीति बन्धः विगलितसमस्तक्लेशतद्वासनावरणज्ञानस्य सुखैक-तानस्यात्मन उपरिदेशावस्थानं मोक्ष इत्येके। अन्ये तूर्ध्वगमनशीलो हि जीवो धर्माधर्मास्तिकायेन बद्-

---

शुक्ल पुद्गलविपाकहेतु वेदनीय सो दोप्रकार सोभी मोक्षके विषय परिपन्थि है वेदनीय कर्मानुयायी नामकर्म करके नाना रूप अवस्था करता है गोत्रकर्म अव्याकृत वो शक्तिरूप करके रहा है। आयुष्कर्म उत्पादनद्वारा कथन करै उसको आयु कहते हैं। एह अघाति कर्म है। ऐसे आठ कर्म करके पुरुषको बंधन करै उसको बंध कहते हैं। विगलित समस्त क्लेशऽना वरणज्ञानक सुखैकतान आत्माका लोकान्तावस्थान उसको मोक्ष कहते हैं। तथा सात पदार्थ जीवादि अवान्तर भेदसहित उप

परिशीलनात् यदूर्ध्वं गच्छत्येव स मोक्ष इति। तदेवं ते पदार्था जीवादयः स्वभावान्तरप्रभेदैरुपन्यस्ताः। तत्र सर्वत्र चेमं सप्तभङ्गीनयं नाम न्यायमवतारयन्ति स्यादस्ति १ स्यान्नास्ति २ स्यादवक्तव्यः ३ स्यादस्ति नास्ति ४ स्यादस्ति अवक्तव्यः ५ स्यान्नास्ति अवक्तव्यः ६ स्यादस्तिनास्ति युगपदवक्तव्यः ७ चेति। स्याच्छब्दः खल्वयं निपातस्तिङन्तप्रतिरूपको अनेकान्तद्योती यथाह वाक्येष्वनेकान्तद्योति गम्यं प्रति विशेषणं। स्यान्निपातोऽर्थयोगित्वात्तिङन्तप्रतिरूपकः। यदि पुनरयमनेकान्तद्योतकः स्याच्छब्दो न भवेत्तदा स्यादस्तीति वाक्ये स्यात्पदमनर्थकं स्यात्। तदिदमुक्तमर्थयोगित्वात् इति। अनेकान्तद्योतकत्वे तु स्यादस्ति कथञ्चिदस्तीति स्यात् पदात् कथञ्चिदर्थोऽस्तीत्यनेनानुक्तः प्रतीयत इति नानर्थक्यम्। तथा च स्याद्वाद

---

स्यात् किंतु यहां सर्वत्र सप्तभङ्गी न्याय उतारते हैं। स्यादस्ति स्यान्नास्ति स्यादस्तिनास्ति स्यादवक्तव्य स्यादस्ति अवक्तव्य स्यान्नास्ति अवक्तव्य स्यादस्तिनास्ति युगपदवक्तव्य ७ स्याच्छब्द यह निपात तिङन्तप्रतिरूपक अनेकान्तद्योतक। वाक्य में विधि अनेकान्तद्योतक स्यात् यह निपात है तिङन्त प्रतिरूपक है जो फिर यह अनेकान्त न होय तो स्यादस्ति इस वाक्य में स्यात्पद

सर्वथैकान्तत्यागात् किं वृत्त चिह्निधे सप्तभंगीनय हेयादेयविशेषकृत्। किं वृत्ते प्रत्यये खल्वय पातो विधिना सर्वथैकान्तत्यागात् सप्तस्वैक यो भंगस्तव यो नयस्तदपेक्ष सन हेयोपादेय भेदाय स्याद्वाद कल्पते। तथा हि य वस्तुस्वं नित्यैकान्ततस्तत् सर्वथा सर्वदा सर्व सर्वात्मनाऽस्त्येवेति न तद्दोपादानहानाभ्या क्वचित् कदाचित् कथचित कश्चित् प्रवर्त्तते निवर्त्तते प्राप्त प्रापणीयत्वात हेयहानानुपपत्तेश्च। अनेकान्तपक्षे क्वचित् कदाचित कस्यचित कथचित् सत्त्वे हानोपादाने प्रेक्षावता कल्प्येते इति।

---

अनर्थक होय। इस वास्ते उक्त अर्थके योगमें अनेकान्तद्योतक होनेसे कथचिदस्तीति अर्थ जाना जाता है इसमें स्यात पदका अनर्थकता नहीं है।

तथाच स्याद्वाद सर्वथैकान्तत्याग सेती ज्ञानविधि सप्तभंगी नयापेक्ष हेय उपादेय विशेष करनेवाला है। वस्तुत सर्ववस्तु सर्वथा सर्वदा सर्वात्मा करके विद्यमान है कही त्याग कहो ग्रहण कथचित कचित प्रवृत्तिनिवृत्तिरूप प्राप्तप्रापणीयहेयहान दोनोंकी अनुपपत्ति सेती इसवास्ते अनेकान्तमे क्वचित कोइ कालमें किसी को कोइ प्रकार करके अथको बोध होता है बुद्धिमतो की कल्पित होता है।